ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला – 5

लोकविद्या

विद्या आश्रम

सारनाथ, वाराणसी–221007

ज्ञान की राजनीति पुस्तक माला – 5

सामान्य सम्पादक : डा. चित्रा सहस्रबुद्धे

पुस्तक : **लोकविद्या**

लेखक : डा. चित्रा सहस्रबुद्धे

वर्ष : नवम्बर, 2008

सहयोग राशि : रू. 10/–

प्रकाशन : डा. चित्रा सहस्रबुद्धे, द्वारा विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी की ओर से

अक्षर संयोजन : एफिशिएन्ट प्रिन्टर्स, कचहरी, वाराणसी

मुद्रक : सतनाम प्रिन्टर्स, पाण्डेयपुर, वाराणसी

सम्पर्क : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007

फोन : 0542–2595120

वेब साइट : **vidyaashram.org**

लोकविद्या

अध्याय पृष्ठ संख्या

1.	गरीबी कृत्रिम है?	6
2.	जिसकी विद्या उसकी शक्ति	16
3.	लोकविद्या क्या है?	22
4.	लोकविद्याकरण	30
5.	लोकविद्या की सामाजिक शक्ति	34
6.	लोकविद्या की आर्थिक शक्ति	43
7.	दर्शन	52
8.	ज्ञान की राजनीति	63

परिशिष्ट :

1.	*लोकविद्या पंचायत*	69
2.	*भाईचारा विद्यालय*	72
3.	*ज्ञान मुक्ति मंच*	75
4.	*लोकविद्या सत्संग*	77
5.	*बौद्धिक सत्याग्रह*	*79*

विषय प्रवेश

औद्योगिक क्रांति से मनुष्य की वैचारिक और व्यावहारिक गतिविधियों का केन्द्र 'उत्पादन' रहा और उत्पादन के साधन, मालिकाना, नियंत्रण, प्रबन्धन, केन्द्रीकृत/विकेन्द्रित उत्पादन आदि इस युग में बहस के मुद्दे रहे। जहाँ एक तरफ पूँजीवादी शक्तियों ने इन मुद्दों को अपने पक्ष में स्थापित किया वहीं इन्हीं मुद्दों ने इस युग की बुनियादी राजनीति यानि लोगों के हित की राजनीति के लिये रास्ते भी खोले। सूचना युग में वही स्थिति 'ज्ञान' की है। आज 'ज्ञान' केन्द्र में है और इसके विभिन्न पक्षों पर बहस को खोले बिना आज की बुनियादी राजनीति का रास्ता खुलता नही है।

आज 'ज्ञान' शब्द का इस्तेमाल सब जगह हो रहा है– ज्ञान–समाज, ज्ञान–श्रम, ज्ञान–प्रबन्धन, ज्ञान–उत्पाद, ज्ञान– आर्थिकी, ज्ञान–केन्द्र, ज्ञान–सहयोग आदि। अब ज्ञान–गतिविधि का एक नया ही स्थान अस्तित्व में आया है जिसे इन्टरनेट कहते हैं। इन्टरनेट आने के बाद से ही सारी बातों के केन्द्र में 'उत्पादन' नहीं बल्कि 'ज्ञान' आ गया है।

यह पुस्तिका उन सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये लिखी गई है जो सूचना युग में हो रहे बदलावों पर नज़र रखना चाहते हैं और उस विचार को गढ़ने का उत्साह रखते हैं जिसके बल पर आज बुनियादी राजनीति खड़ी होगी।

ज्ञान की राजनीति

सन् 1990 से पूरी दुनिया में एक परिवर्तन का दौर चल रहा है। सूचना उद्योग का विकास, निजीकरण, बाजार, मीडिया और मनोरंजन, जैविक खेती, शहरों का पुनर्संगठन, वैश्वीकरण, अमेरिका की दादागिरी इत्यादि कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनके मार्फत इस परिवर्तन को समझा जा सकता है।

सूचना उद्योग ने ज्ञान की नई परिभाषा दी है और यह कहा जा रहा है कि इस परिवर्तन के मार्फत एक ज्ञान आधारित समाज बन रहा है। विज्ञान की सिरमौर स्थिति टूट गई है। इंटरनेट का बोलबाला बढ़ा है। इससे सार्वजनिक क्षेत्र में लोकविद्या को फिर से पहचान मिली है।

ज्ञान और विकास की बातें कारीगरों, किसानों, मजदूरों, महिलाओं, मध्यम वर्गों, छोटा–छोटा धन्धा करने वालों और आदिवासियों के लिये भुलावा साबित हो रही है। ये सब लोग पुख्ता ज्ञान और कौशल रखते हैं। लेकिन एक तरफ इस ज्ञान पर कम्प्यूटर–इंटरनेट द्वारा कब्ज़ा किया जा रहा है और दूसरी ओर इस ज्ञान के आधार पर उत्पादित वस्तुओं को बाजार में दाम नहीं मिलता। इस तरह गरीब किंतु ज्ञानी समाज के ज्ञान पर कब्जा किया जा रहा है और उसका शोषण हो रहा है। लोकविद्या, साइंस और इंटरनेट सभी के ज्ञान पर नये उद्योगपतियों और वित्तीय पूँजी के मालिकों का कब्जा है।

सभी राजनीतिक पार्टियाँ उसी विकास के आदर्श को मानती हैं जिसमें गरीबी दूर करने का कोई रास्ता नही है उल्टे जो गरीबों के शोषण पर ही आधारित होता है। ज़रूरत एक ऐसे परिवर्तन की राजनीति की है जो गरीबों के हितों को सर्वोपरि रखे। यह तभी संभव है जब एक नई परिवर्तन की राजनीति खड़ी हो। यह ज्ञान की राजनीति होगी।

ज्ञान की राजनीति के विचार को सबके सामने रखने के लिये और उस पर सार्वजनिक बहस छेड़ने के लिये पाँच पुस्तकों की यह पुस्तक–माला बनाई गई है। ये पुस्तकें हैं–

1. बौद्धिक सत्याग्रह
2. लोगों के हित की राजनीति और ज्ञान का सवाल
3. ज्ञान मुक्ति आवाहन
4. युवा ज्ञान शिविर
5. लोकविद्या

1

गरीबी कृत्रिम है?

बनारस में राजघाट पर एक चर्चा का आयोजन है। ि ाक्षा, तकनीकी विकास और दे ा की प्रगति बहस का विशय है। सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ता जुटे हुये हैं। बाहर से भी कई लोग आये हैं। बहस तेज़ हुई है। सभा खत्म होने के बाद दो–चार के झुण्ड़ में बात करते हुये लोग सभा–स्थल से धीरे–धीरे मुख्य सड़क पर आ गये हैं। इनमें ही एक समूह में बहस तेज़ हो रही है। सड़क पर आकर यह समूह भी बिखरने लगा। कुछ लोग अपनी साइकिल या स्कूटर पर सवार हो अपने रास्ते चले गये। समूह के दो ही व्यक्ति बच गये। इनमें से एक 28–29 वर्श का युवक है और दूसरा करीब 40–45 का प्रौढ़। अपनी–अपनी साइकिल पकड़े ये दोनों काफी देर वहीं खड़े बात करते रहे। फिर साइकिलें वापस खड़ी कर एक कोने में जा बैठे और वार्ता गंभीर होती चली गई। प्रौढ़ व्यक्ति युवक के सवालों का जवाब दे रहा है।

प्र0 आजादी के बाद दे ा ने बहुत तरक्की की है। दुनिया में भारत के कम्प्यूटर इंजीनियर और वैज्ञानिकों का सिक्का जम गया है। दुनियाभर में उनकी बड़ी माँग है। क्या ये बड़ी बात नहीं है?

उ0 हाँ, यह सच है कि दुनिया में कम्प्यूटर इंजीनियर और वैज्ञानिकों में भारतीयों की संख्या बढ़ी है, लेकिन इसलिए दे ा तरक्की पर है यह कैसे साबित होता है? दे ा की तरक्की कैसे आँकी जाती है? क्या इने–गिने लोगों की तरक्की से दे ा तरक्की पर है कहा जा सकता है? दे ा की तरक्की तो इस बात से आँकी जानी चाहिए कि यहाँ गरीब लोगों के रोजगार कितने समृद्ध हुये हैं, उनके लिए अवसर कितने बढ़े हैं, उनके भोजन में पौश्टिकता कितनी बढ़ी, उनके लिए ि ाक्षा और चिकित्सा व्यवस्थाओं को कितना सरल, कारगर और क्षमतावान बनाया, प्राकृतिक संसाधनों को कितना समृद्ध किया, व्यवसायों में गरीबों की पहल, दखल और सक्रियता में कितनी वृद्धि हुई, जनता के बीच बराबरी, सहयोग और भाईचारे के भावों में कितनी वृद्धि हुई, आम आदमी का नैतिक मूल्यों के प्रति आग्रह कितना बढ़ा, आदि।

प्र0 गरीबी का सवाल तो पुराना है। गरीबी–अमीरी तो हमे ाा से चली आ रही है, यह नहीं हटेगी। क्या यह बड़ी बात नहीं है कि कुछ लोग तो यूरोप और अमेरिका के लोगों के बराबरी में खड़े होकर दे ा का सर ऊँचा करेंगे?

उ0 यह क्यों सोचते हैं कि यूरोप और अमेरिका के लोग ऊँचे हैं और हम नीचे हैं। हम उन्हीं के समान होंगे तभी हम तरक्की कर रहे होंगे यह मानने में तो बड़ी गड़बड़ है। क्योंकि यूरोप और अमेरिका के पास जो सम्पत्ति है वह तो हम जैसे दे ाों से वे लूटकर ले गये हैं। इसी धन के बल पर उन्होंने उनके यहाँ के मूल निवासियों, जीवों और प्राकृतिक क्रियाओं के साथ गैर–जिम्मेदाराना व क्रूरतम छेड–छाड़ की है। जिसके चलते आज दुनिया में पर्यावरण का संकट खड़ा हो गया है। आज भी वे गरीब दे ाों को जब–तब धमकाते रहते हैं। हाल ही में अमेरिका ने तो सारे उसूलों को ताक पर रखकर इराक, अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया है और यूरोप के कुछ दे ाों ने अमेरिका की मदद में अपनी सेनाये भी भेजी हैं। उनकी बराबरी में खड़े होने में इज्जत कहाँ है? इसकी आकांक्षा हमें क्यों हो?

दूसरी बात, गरीबी कोई हमे ाा से रही है ये बात नहीं है। गरीबी तो मनुश्य समाज की व्यवस्थाओं से पैदा होती है। यह कृत्रिम ढंग से पैदा की जाती है। इन व्यवस्थाओं में सुधार

कर या इन्हें बदलकर अथवा नई व्यवस्थाओं को गढ़कर इसे दूर किया जा सकता है। आमदनी में थोड़ा बहुत अंतर तो हो सकता है, लेकिन गरीबी तो तभी आती है जब अधिकतम आमदनी और न्यूनतम आमदनी के बीच बहुत ज्यादा अंतर बना दिया जाय। अधिकतम आय वालों की संख्या कम ही हो पाती है लेकिन वे समाज की हर व्यवस्था पर हावी हो जाते हैं, उन्हें खरीदते चले जाते हैं, नतीजतन गरीबी और बढ़ती ही जाती है।

प्र0 लोग गरीब तो कामचोरी की वजह से होते हैं। पढ़ना नहीं चाहते, मेहनत नहीं करना चाहते, रूढ़िवादी हैं, बदलना नहीं चाहते।

उ0 यह कहना कठिन है। इस तरह एक से बढ़कर एक इल्जाम लगाना भाायद ठीक नहीं होगा। कोई जानबूझकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी तो मारता नहीं है। किसान किसलिए आत्महत्या कर रहे हैं? नपुंसक बीज के चलते उनकी खेती ग़र बरबाद होती है तो इससे वे कामचोर कैसे हो जाते हैं? उनकी फसल को लगातार लागत से कम मूल्य मिले तो इससे वे कामचोर क्यों कहे जायेंगे? बुनकर की हालत भी किसान से अलग नहीं है। यूं कहें कि हर कारीगरी में आज यह हाल है कि दिन में 12 घण्टे काम करने के बावजूद महीने भर की कमाई 3000 रूपये से अधिक बड़ी मुि कल से हो पाती है। दे ा के हर हिस्से में कम–अधिक यही हाल है। किसान या कारीगर ही नहीं, छोटे–छोटे दुकानदारों का भी यही हाल है। वास्तव में आज जो गरीब हैं वे मज़दूर, किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे दुकानदार ही हैं और ये सब मिलकर दे ा की आबादी का 80 फीसदी हैं। ये सब के सब तो कामचोर नहीं हैं। इन्हें गरीब रहने का भाौक नहीं हैं। वे रूढ़िवादी हैं यह कहना तो सरासर गलत होगा, क्योंकि कोई सही विकल्प हो तो वे उसे चुनते ही हैं, लेकिन विकल्प है कहाँ?

प्र0 आप ही बतायें कि ये लोग गरीब क्यों हैं?

उ0 इस सवाल का जवाब आसान नहीं है लेकिन कुछ मोटे और स्पश्ट देखे जा सकने वाले कारणों की बात तो की ही जा सकती है। पहले तो यह जान लीजिए कि गरीबी कृत्रिम ढंग से थोपी जाती है। अंग्रेजों की गुलामी से गरीबी हमने विरासत में पाई है। अपने ही दे ा में नहीं बल्कि दुनिया भर में गरीबी का पैमाना 19वीं–20वीं सदी में अचानक बहुत बढ़ा है। यह औद्योगिक युग की देन है। यूरोप के कुछ दे ाों ने म ाीन से तीव्र गति से उत्पादन करके और उपनिवे ाीकरण की राजनीति खेलकर प्रकृति का और मनुश्य श्रम का अंधाधुंध दोहन भाुरू किया। नतीजा यह हुआ कि वे तो अमीर हो गये, पर उपनिवे ा के समाज और प्रकृति दोनो गरीब होते चले गये। दुनिया में अब सभी दे ा आजाद हैं, लेकिन आजाद दे ाों के आर्थिक–राजनैतिक ढाँचे में कोई बड़ा फेरबदल नहीं किया गया, जिससे मनुश्य समाज और प्रकृति की गरीबी बढ़ती ही चली गई। यकीनन ऐसा भी हुआ कि आजादी के बाद कुछ काल के लिए राहत अव य हुई और स्थानीय समाजों के कुछ अधिक तबकों तक सम्पन्नता पहुँची। बड़े उद्योग, बड़े वि वविद्यालय, बड़े अस्पताल, बड़े बाँध, बड़ी परियोजनाओं का दौर चला। यानि वह सब कुछ हुआ जिसकी यूरोप की ज्ञान प्रणाली (साइंस) ने वकालत की। सांइस ने मनुश्य–श्रम और प्रकृति के तीव्र दोहन को मजबूती देकर आधुनिक व्यवस्थाओं की चमक भाहरी क्षेत्रों में पहुँचाई, पर इसकी कीमत किसने चुकाई? हमारे किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे–छोटे दुकानदारों ने गरीब होकर इसकी कीमत चुकाई।

प्र0 वह कैसे?

उ0 हमारे किसानों को मिलों और कारखानों की जरूरत को पूरा करने के लिये मजबूर किया गया। उन्हें सस्ते दामों पर अपने उत्पाद बेचने पड़े। आदिवासियों को जंगल से बेदखल कर जंगल के उत्पादों को कारखानों के लिए लगभग मुफ्त मुहैया कराने की व्यवस्था की गई।

कारीगरों के उत्पादन को कच्चे माल से वंचित किया गया, उनके उत्पादों का बाजार तोड़ दिया गया और बाजारों को कारखानों के उत्पादों से पाट दिया गया। किसान, कारीगर, आदिवासी समाज के लिए यह हाल बना दिया कि वे अपना उत्पाद और श्रम सस्ते में बेचें और जिन्दा रहने के लिए आव यक सामान महँगे दामों पर खरीदें। फलतः वे गरीब होते चले गये। दुःख तो यह है कि ये सब इन्हीं के द्वारा चुनी गई सरकारों की नीतियों से हुआ। गरीबी इनकी कामचोरी से नहीं, बल्कि कृत्रिम ढंग से नीति बनाकर व्यवस्थाओं के मार्फत इन पर लादी गई है।

प्र0 ये तो अि ाक्षा की वजह से गरीब है। इन समाजों के लोग ि ाक्षा प्राप्त कर अच्छे पैसे वाले क्षेत्रों में जा सकते थे। इन्होंने ऐसा नहीं किया। अपने रूढ़िवादी मूल्यों से चिपके रहे, फलतः गरीब रहे।

उ0 यह तो बड़ा इल्जाम लगा रहे हैं। ये लोग ि ाक्षित नहीं हैं, ऐसी बात आप कैसे कह सकते हैं? लेकिन ठहरो, मैंने अभी पहले सवाल का जवाब पूरा नहीं दिया है।

किसान, कारीगर, आदिवासी समाजों पर केवल आर्थिक गरीबी ही नहीं लादी गई, बल्कि ज्ञान की गरीबी भी जबर्दस्ती लाद दी गई। इन समाजों के पास अपना–अपना ज्ञान था और वे बाकायदा इसमें ि ाक्षित होते थे। किसान को किसानी में ि ाक्षित होने में प्रकृति का, जमीन का, मौसम का, बीजों का, पौश्टिकता और न जाने कितने जीवों और प्रक्रियाओं का गहराई से ज्ञान हासिल करना होता है, इसे सीखने में वर्शों लग जाते हैं। कारीगर भी वर्शों के ि ाश्यत्व और अभ्यास के बाद ही उत्पादन कर पाने की कला हासिल करता है। इस दौरान विभिन्न पदार्थों, प्रक्रियाओं, बलों आदि के गुण और आपसी सम्बन्धों की समझ हासिल करता है। आदिवासी जंगल के कण–कण की खूबी को जानने में पूरा जीवन लगा देता है। चूँकि ये लोग इस प्रकार के ज्ञान की ि ाक्षा किसी स्कूल–कालेज से नहीं पाते रहे हैं, इसलिए इन्हें अि ाक्षित घोशित कर दिया गया है। आप जैसे पढ़े–लिखे लोग भी यही मानते हैं। उनके ज्ञान को ज्ञान ही नहीं मानते, क्योंकि उनका ज्ञान साइंस जैसा नहीं है। स्कूल–कालेज में पढ़े लोग साइंस को ही जायज़ ज्ञान मानते रहे हैं। मात्र इसे ही मनुश्य की प्रगति का आधार मानते रहे हैं। वे भूलते हैं कि साइंस ने मनुश्य और प्रकृति के भाोशण का आधार भी मजबूत किया है। वे इस तथ्य को बडी आसानी से नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। साइंस के आगे अन्य सभी ज्ञान को पिछड़ा करार दिया गया है। साइंस ने कहीं–कहीं तो अन्य कई ज्ञान के प्रकारों को नाजायज़ ही बना दिया। दूसरी तरफ इन समाजों के ज्ञान का आर्थिक मूल्य भी कम कर दिया गया, जिसके चलते उनका ज्ञान पिछड़ा ज्ञान प्रतीत होने लगा। इस तरह एक तरफ इनके ज्ञान को कृत्रिम ढंग से निकृश्ट बनाकर त्यागने के लिए मजबूर किया गया और दूसरी तरफ नई ि ाक्षा व्यवस्था में प्रवे ा के मार्ग बेहद सँकरे बना दिये जिस कारण गरीब समाज आधुनिक ज्ञान से भी वंचित हो गया। इस तरह इन समाजों पर ज्ञान की गरीबी लादी गई। आर्थिक गरीबी और ज्ञान की गरीबी मिलकर बहुत ही घातक साबित हुई। लेकिन यह बात पक्की है कि ये दोनों ही गरीबी कृत्रिम हैं और ये समाज ठान लें तो इसे जब चाहे तब दूर कर सकते हैं।

प्र0 सभी सरकारें कल्याण कार्यक्रमों के मार्फत गरीबों को बहुत देती रही हैं, अब भी दे रही हैं। एन.जी.ओ. और अंतर्राश्ट्रीय संस्थायें बड़े पैमाने पर मदद भी कर रही हैं। क्या इससे समस्या हल नहीं होगी?

उ0 मनुश्य बौद्धिक प्राणी है। उसे केवल भोजन की ही जरूरत नहीं है। वह तो केवल सबसे पहली आव यकता है। भोजन के अलावा उसे एक सक्रिय वैचारिक व सृजन ािल माहौल की आव यकता होती है, जिसके अभाव में वह प ाुवत् हो जाता है। अन्य मनुश्यों के साथ और प्रकृति के साथ रि ते बनाकर प्रेम और सम्मान की लय में जीना उसकी जरूरत है।

इन सबका अभाव होना गरीबी है। फिर गरीब समाज को क्या चाहिए, यह कोई और तो नहीं बतायेगा। वे खुद बतायेंगे। आज हर कोई, सरकार, अन्तर्राश्ट्रीय संस्थायें, एन.जी.ओ. आदि खुद ही तय कर लेते हैं कि गरीब समाज को क्या चाहिए। यह सब वे भीख की तरह देते हैं। इससे तो गरीबी बढ़ती है, घटती कहाँ है?

प्र0 हाँ, यह तो ठीक है। डाक्टर जिस तरह मरीज को बेवजह दवाईयाँ देता है और अपना धन्धा चलाता है, कुछ ऐसी ही इन संस्थाओं की चाल होती है। लेकिन सरकारें तो हमारी अपनी होती हैं। इन्हीं समाजों द्वारा चुनी हुई होती हैं। अब तो राजनैतिक दलों की संख्या भी बहुत है और इनमें क्षेत्रीय, अनुसूचित और पिछड़ी जाति के अपने–अपने राजनैतिक दल भी हैं। ऐसे में किसानों की, कारीगरों की, आदिवासियों की बदहाली क्यों है ?

उ0 यह बात समझने की है। राजनैतिक दल अनेक हैं। गरीब समाजों का प्रतिनिधित्व करने वाले भी अनेक दल हैं। लेकिन इन दलों का आर्थिक–राजनैतिक कार्यक्रम तो वही है जो किसी पूँजीवादी राजनैतिक दल का होता है। आज सभी दल कम–ज्यादा अमेरिका के साथ हैं और अमेरिका के नेतृत्व में वै वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार में ही विकास का आधार देखने वाली आर्थिक–राजनैतिक नीति को आद ा मान रहे हैं। बे ाक़ कहीं–कहीं कम–अधिक असहमति है, लेकिन वह तो मामूली है। विकास का यह मूल ढाँचा सभी राजनैतिक दलों ने कबूल किया है। ऐसे में विकास का कोई दूसरा चित्र इन दलों के पास नहीं है। यह विकास तो आर्थिक गरीबी और ज्ञान की गरीबी को ही और अधिक तेज करने वाला है। ऐसे में इन दलों से उम्मीद तभी की जा सकती है, जब ये अपने समाज की गरीबी को दूर करने के लिए दूसरे विकल्प तला ाने की तैयारी दिखायें।

प्र0 अखबार, पत्रिका, टी.वी. पर यही लिखा और कहा जा रहा है कि हमारा दे ा तो इस सूचना–प्रौद्योगिकी में अग्रणी माना जा रहा है। इस प्रौद्योगिकी के समर्थक कह रहे हैं कि कम्प्यूटर–इंटरनेट–मोबाइल से मनुश्य–समाज तेजी से विकास कर रहा है। बड़े ओहदों पर बैठे लोग, पढ़े–लिखे विद्वान सभी यह कह रहे हैं। भाक़ की गुंजाइ ा कहाँ है?

उ0 बात सही है। औद्योगिक युग में भी ये ही लोग थे जिन्होंने साइंस की जरूरत से ज्यादा तारीफ और वकालत की थी। अब वे ही अगर सूचना–प्रौद्योगिकी की वकालत कर रहे हैं तो हमें एक बार सोचने की जरूरत तो है ही। क्या हम बार–बार ठोकर ही खाते रहेंगे? फिर हमारे पास सोचने–विचार करने की भाक्ति है, हम खुद क्यों न इस प्रौद्योगिकी के गलत पक्षों को सार्वजनिक बहस में लाकर उन पर नियंत्रण के रास्ते खोज निकालें?

प्र0 किसान, कारीगर और जंगल के निवासियों के बस की तो ये बात है नहीं। ये तो पढ़े–लिखे भी नहीं हैं।

उ0 जिसको चोट लग रही है उसे दर्द हो रहा है, यह कहने में क्या पढ़ाई–लिखाई की जरूरत होती है? चोट खा रहे लोगों की संख्या भी बहुमत में है। फिर जिन्हें चोट न भी लग रही हो, वे भी तो इन्सान ही हैं। घायल और दुखी मनुश्यों की पीड़ा को समझने वाले और उससे मुक्ति दिलाने में मदद के हाथ बढ़ाने वालों की कमी नहीं है।

प्र0 बात तो ठीक है, लेकिन फिर किस बात की कमी है?

उ0 इस समाज को अपनी भाक्ति पहचानने और उस पर भरोसा करने में आत्मवि वास की कमी है। अभी तक तो आज़ादी के बाद से यह बताने वाले ही लोग मिलते रहे हैं कि समाज के विकास के लिए भाक्ति के स्रोत गरीब समाज के पास नहीं होते हैं। समाज की भाक्ति के आधार समाज के बाहर हैं, यह कहकर हमें बरगलाया गया है। हमारे साथ ाड्यंत्र किया जा रहा है।

प्र0 लगता है आपका वि वास दुनिया से ही उठ गया है। किसी पर भरोसा करने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं। निरा ा हो गये हैं।

उ0 नहीं, आप मेरी बातों का यह अर्थ ले रहे हैं तो मैं कहूँगा कि यह गलत है। मैं कत्तई निरा ा नहीं हूँ। मैंने तो भुारू में ही कहा कि गरीबी तो कृत्रिम है और इसे दूर किया जा सकता है।

प्र0 लेकिन आप तो सरकार, अंतर्राश्ट्रीय संस्थाओं, राजनैतिक दल, वै वीकरण यहाँ तक कि साइंस और सूचना प्रौद्योगिकी से प्राप्त गगनचुम्बी उपलब्धियों को भी देखकर उत्साहित नहीं दिखाई देते।

उ0 देखिये, इन सभी की सफलता का कोई मानदण्ड तो आप रखेंगे ही। क्या इन मानदण्डों में गरीबी या गरीब आदमी को हमे ाा ही गौण माना जायेगा? अगर ऐसा ही रहेगा तो गरीबी खत्म होने की संभावनायें ही खत्म हो जायेंगी। अब संसदीय लोकतंत्र की सीमायें अधिकाधिक स्पश्ट होती गई हैं। वै वीकरण ने छोटी पूँजी के व्यवसाय–जगत में जो अनि चतता ला दी है उसके चलते गरीबी का पैमाना विकराल होता जा रहा है।

प्र0 तो क्या कम्प्यूटर–इन्टरनेट और मोबाइल के मार्फत आई सूचना क्रांति ने हमें कुछ भी नहीं दिया है?

उ0 नहीं, ये बात नहीं है। निःसंदेह सूचना प्रौद्योगिकी बहुत कुछ दे रही है। लेकिन जो दे रही है, जिस ढंग से दे रही है, उसकी हम क्या कीमत चुका रहे हैं? इसकी कीमत कौन लोग चुका रहे हैं? इसे जाँचे बिना हम इसकी उपलब्धियों को कैसे मान लें? क्या हर हाथ में मोबाइल और हर घर में कम्प्यूटर–इंटरनेट आ सकता है? क्या किसी भी आर्थिक नीति और व्यवस्था में यह संभव होगा? अभी तक तो हर घर तक पर्याप्त बिजली ही नहीं पहुँची है। ऐसे में हम कैसे मान लें कि सूचना प्रौद्योगिकी से गरीबी खत्म होगी या हमारी तरक्की होगी? और अब हम ये नहीं कह सकते कि हम तो अनजान हैं या इसकी जाँच करना हमारा काम नहीं। क्योंकि साइंस ने भी ऐसे ही बड़े–बड़े वादे किये थे। हमने साइंस की वकालत करने वालों पर अंध भक्ति रखी। नतीजा यह हुआ कि मनुश्य समाज और प्रकृति दोनों गरीबी के महारोग से ग्रस्त हो गये। हम भुक्त भोगी हैं। ऐसे में इस नई प्रौद्योगिकी को जाँचे बिना इसकी वकालत न करेंगे और न करने देंगे।

प्र0 आपकी बातें मुझे बहुत महत्व की लग रही हैं। आप सरल ढंग से बातों को रख रहे हैं जिससे मेरी दिलचस्पी बढ़ रही है। लग रहा है कि जिन बातों पर कभी ध्यान ही नहीं गया वे बातें कितना ज्यादा महत्व रखती हैं। मुझे लगने लगा है कि यहीं बातें हैं जिनमें बदलाव की कुंजी छिपी है। लेकिन अभी तो बहुत से संदेह हैं, सवाल हैं, उन पर खुलासा ज़रूरी है। मैं चाहता हूँ कि वार्ता आगे जारी रखें।

उ0 जरूर! लेकिन कल तो मैं हरिहरपुर जा रहा हूँ। बहुत दूर नहीं, यहाँ से 20 कि0मी0 पर है। वहाँ पर कुछ कारीगरों और किसानों ने मिलकर भाम को वरूणा के तट पर मिल–बैठकर वार्ता का विचार बनाया है। वहीं इस वार्ता को आगे बढ़ायेंगे। समय निकालकर आप भी आ जाइये।

प्र0 ठीक है। मैं ज़रूर आऊँगा ।

❁

2

जिसकी विद्या उसकी शक्ति

गाँव हरिहरपुर में वरूणा तट पर लगभग 20–25 लोग इकट्ठा हैं। ये लोग हरिहरपुर और उसके आसपास के चार–पाँच गाँवों से आये हैं। इनमें कुछ किसान हैं, कुछ बुनकर हैं, कुछ मजदूर और कुछ बेरोजगार हैं। वार्ता शुरू हुई और अपने–अपने व्यवसाय की समस्याओं को सामने रखते हुये मंदी, नुकसानी, प्रशासन की उदासीनता आदि मुद्दों पर बातें रखी गयीं । क्षेत्र में दो बुनकरों ने परिवार सहित आत्महत्या की है, उनके बारे में विस्तार से बातें रखी गईं। बातें करते–करते शाम का अंधेरा गहराने लगा। अंधेरे में वरूणा का पानी और ज्यादा काला दिखाई देने लगा। बस्ती के घरों से धुँआ उठने लगा और वातावरण को अधिक उदास बनाने लगा। वार्ता बिना किसी निर्णय के खत्म हो गई लेकिन यह तय किया गया कि दो दिन बाद फिर से बैठा जाय। हमारे प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता ने रात हरिहरपुर में ही रूकने का तय किया और भोजन के बाद रात्रि के अंधेरे में कल की वार्ता को आगे बढ़ाया।

प्र0 दुनिया के बड़े–बड़े नेता, वैज्ञानिक और विचारक इस युग की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण के नश्ट होने को या मौसम–परिवर्तन को मानते हैं। आप गरीबी को सबसे बड़ी समस्या मान रहे हैं। इसकी चर्चा तो कोई नहीं करता।

उ0 जाके पैर न फटै बिवाई, वह क्या जानै पीड़ पराई। मैंने कहा नं कि मनुष्य समाज में गरीबी और प्रकृति की गरीबी दोनों का स्रोत एक ही है और ये दोनों गरीबी ज़बर्दस्ती थोपी गई हैं। इनमें से एक की ही बात करना बेईमानी है।

प्र0 आप बार–बार कहते रहे हैं कि गरीबी कृत्रिम है और यह समाज मन बनाये तो इसे खत्म कर सकता है। लेकिन आज शाम को जो लोग आये थे क्या उनसे ऐसा काम कर पाने की उम्मीद की जा सकती है? मुझे तो नहीं लगता। इनमें कोई शक्ति ही नहीं हैं।

उ0 मुझे नही लगता कि उनमें शक्ति नहीं है। बात ये है कि न उन्हें और न और लोगों को उनकी शक्ति का एहसास है। सबसे पहले इस शक्ति का एहसास करना और कराना ही बड़ा काम है।

प्र0 गरीब समाज के पास ऐसा क्या है जिसमें आपको शक्ति दिखाई देती है?

उ0 क्षेत्रीय विभिन्नताओं के बावजूद गरीब समाज में जो लोग हैं उनमें बड़ा हिस्सा किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे दुकानदारों का है। इन सभी लोगों के पास आधुनिक शिक्षा की शक्ति नहीं है, धन की शक्ति नहीं है, बड़े ओहदों पर रहने से प्राप्त शक्ति भी नहीं है। इनकी शक्ति इनकी अपनी विद्या में बसती है। मैंने पहले भी कहा है कि इन्हें अशिक्षित या अज्ञानी कहना बड़ी भूल है। इनका ज्ञान लोकविद्या कहलाता है। लोकविद्या का भण्डार किसी भी अन्य ज्ञान से बहुत बड़ा है। ये लोकविद्याधर हैं। इस लोकविद्या के बल पर न केवल ये अपनी गरीबी का जुँआ उतार फेंक सकेंगे, बल्कि पूरे समाज को अधिक बराबरी का और न्यायपूर्ण बना सकेंगे और प्रकृति की लय के साथ जीने की व्यवस्थाओं से लैस भी कर सकेंगे।

प्र0 मुझे तो यह अतिरंजना लगती है। ऐसा तो अभी किसी विचार में सुनने या पढ़ने में नहीं आया है, न यूरोप के विचारकों में और न अमेरिका के।

उ0 हाँ, शायद ऐसा हो सकता है, क्योंकि हम विचार के लिए हमेशा ही यूरोप या अमेरिका की ओर ताकने के आदि हो चुके हैं। लेकिन अगर आपने पूरब के विचारकों के बारे में सुना–पढ़ा

होगा तो आप जानकारी रखते होंगे कि उन्होंने हर युग में 'अपनी' शक्ति को पहचानने पर जोर दिया है। हर युग में इस शक्ति की पहचान नये ढंग से की गई है और इसके बल पर लोकहितकारी परिवर्तन लाये गये हैं। आज भी इसे आजमाया जा सकेगा। आज यह शक्ति लोकविद्या में है।

प्र0 मुझे यह अब रहस्यमय लग रहा है। मैं अधिक उत्सुक होता जा रहा हूँ। पहले तो आप ये बतायें कि लोकविद्या क्या है और इसमें आप इतनी ताकत क्यों और कैसे देखते हैं?

उ0 नहीं, ये बातें इतने उतावलेपन या जल्दी दिखाने से नहीं दिखाई देंगी। हम अगर धीरे–धीरे बातों पर चिन्तन करते हुए बढेंगे तो इसे समझने में आसानी होगी।

प्र0 ठीक है। आप अपने ढंग से इसे रखें और जहाँ–जहाँ मुझे संदेह या प्रश्न होगा, मैं आपसे पूछ लूँगा।

उ0 ठीक है। मैं कोशिश करता हूँ। लोकविद्या को हम यूँ समझ सकते हैं कि यह वो ज्ञान है जो समाज में बसा है। लोकविद्या किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय, विश्वविद्यालय या पुस्तक में बाँधी नहीं जा सकती। यह लोगों के जीवन में बसती है। वहीं पैदा होती है और नित–नवीन होती रहती है। लोकविद्या समाज में रहती है, यह सबकी है, यह किसी एक की या कुछ लोगों की नहीं हो सकती। यह मनुष्य और मनुष्य समाज के साथ पैदा हुई है। और इस धरती पर जब तक मनुष्य की हस्ती है तब तक उसके जीवन का सहारा बनी रहेगी।

प्र0 कुछ साफ नहीं हुआ। इसे और विस्तार से बतायें।

उ0 इसे शायद मैं इस तरह रखूँ कि स्कूल–कालेज– विश्वविद्यालय के बाहर जो ज्ञान है वो लोकविद्या है। यानि समाज के बहुसंख्य लोग जिस ज्ञान के बल पर खुद ज़िन्दा रहते हैं और समाज को भी ज़िन्दा रखते हैं, वह ज्ञान लोकविद्या है। जैसे– किसान सब्जी, अनाज आदि पैदा करता है। वह ये सब अपनी विद्या के बल पर पैदा कर रहा है। इस विद्या को उसने स्कूल–कालेज में नहीं पढ़ा, बल्कि अपने समाज के बुजुर्गों से सीखा है। अपनी ज़रूरत और अनुभव से इसमें सुधार करना और इसे नया बनाना उसे आता है। अगर किसी बाहरी ज्ञान से कोई नई बात वह सीखता है, तो उसे वह अपने ज्ञान में शामिल करना भी जानता है। उसी तरह कारीगर समाज है। लोहा, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, काँच, प्लास्टिक, कपास, कागज, धातु आदि से जीवन के लिए आवश्यक चीजों का उत्पादन करने वाले तरह–तरह के कारीगर लोकविद्या के ही धनी हैं। इन्हीं की तरह आदिवासी समाज और महिलायें भी लोकविद्या की धनी हैं। ये सब अपनी विद्या स्कूल–कालेज के बाहर समाज से प्राप्त करते हैं। किसान, कारीगर, आदिवासी और महिलाओं के पास लोकविद्या का असीमित भण्डार है। यह उनकी शक्ति है।

प्र0 ठीक है। अब मैं यह समझ सकता हूँ कि जो व्यक्ति पढ़ा–लिखा नहीं है, उसके पास ज्ञान नहीं है यह कहना गलत होगा। हाँ, यह कहें कि उनके पास स्कूलों में सिखाया जाने वाला ज्ञान नहीं है, किसी दूसरे प्रकार का ज्ञान है। लेकिन सवाल यह है कि उनके पास का ज्ञान यानि लोकविद्या तो पिछड़ी हुई है। उस ज्ञान के बल पर उनकी और समाज की उन्नति कैसे संभव है?

उ0 मैंने इस बात की सफाई पहले कर दी है कि उन्नति, विकास और प्रगति बिना गरीब समाज का संदर्भ लिए तय नहीं की जा सकती। गरीब समाज यानि किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटी–छोटी दुकानदारी करने वाले लोगों की खुशहाली, सक्रियता, पहल, दखल और नियंत्रण को बढ़ानेवाली व्यवस्था का निर्माण तो उनकी अपनी विद्या के बूते ही संभव है। विद्या किसी और की और शक्ति हमारी हो यह नहीं हो सकता। जिसकी विद्या उसकी शक्ति बनेगी।

आजादी के बाद से विद्या तो पश्चिमी समाज (सभ्यता) की अपनाई गई और हम सपने यह देखने लगे कि उनकी विद्या के बल पर हमारी खुशहाली होगी। उनकी विद्या का इस्तेमाल उन्हीं की सेवा में जाना था, सो गया। पिछड़ी और अगड़ी विद्या से आपका क्या मतलब है? मेरे विचार से तो जो विद्या बहुसंख्य समाज के लिए सम्मानपूर्ण रोजगार का सृजन करती हो, जिसमें प्रकृति की लय के साथ जीने का मूल्य निहित हो, जिसमें पूँजी और सत्ता के दबाव को नकारने का आत्मबल हो, वही विद्या अगड़ी मानी जानी चाहिये। जिस विद्या के बल पर उत्पादन तो बहुत होता हो, लेकिन उत्पादन करने वाले गरीबी में ढकेले जा रहे हों, ऐशो–आराम के इंतजाम को बनाने में प्राकृतिक संसाधनों को मनमाने ढंग से लूटने की छूट हो, जो हर क्षेत्र में ऊँच–नीच को बढ़ाती हो, वह विद्या पिछड़ी मानी जानी चाहिए।

प्र0 आपके अनुसार लोकविद्या अगड़ी विद्या है।

उ0 निःसंदेह यह अगड़ी विद्या है। और अगड़ी विद्या इसलिए नहीं है कि इसमें बड़े–बड़े चमत्कार करने की ताकत है, बल्कि इसलिए कि इसमें सारे मनुष्य समाज को सम्मान से जीने के उद्यम देने की क्षमता है। यह मनुश्य का साथ नहीं छोड़ती। निरंकुश और अत्याचारी सत्तायें इसे मिटाने की कोशिश करती रही हैं, लेकिन यह न मरती है, न मिटाई जा पाती है।

प्र0 यह कैसे?

उ0 हमारे अपने देश में देखिये। अंग्रेजों ने लोकविद्या को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। किसानों का जमकर शोषण किया, कारीगरों के उद्योगों को तबाह कर दिया, आदिवासियों को जंगलों से खदेड़ना शुरू किया, लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों में भी इन्हें सहारा लोकविद्या का ही रहा। लोकविद्या के बल पर न केवल ये ज़िन्दा रहे बल्कि समाज के लिए भोजन, कपड़ा आदि का इंतजाम भी करते रहे। आजादी के बाद भी इनकी इस भूमिका को कोई सम्मान मिला हो ऐसी बात नहीं है। विश्वविद्यालय से पढ़े–लिखे लोगों ने लोकविद्या का तिरस्कार ही किया। सरकारों ने इनके उद्यमों को सहारा न देकर उल्टे उजाड़ने का काम ही जारी रखा और पूँजीपतियों के उद्योगों को तरह–तरह की सुविधायें और प्रोत्साहन दिया। इसके बावजूद लोकविद्या मरी नहीं। आज भी इसके द्वारा पैदा किया गया उत्पादन व सेवायें आधुनिक विद्या के बल पर पैदा किये गये उत्पादन/ सेवाओं से कम नहीं हैं। यह लोकविद्या की शक्ति नहीं तो और क्या है?

प्र0 हाँ, यह तो सही है कि अंग्रेजों के राज में सबसे ज्यादा तबाही लोकविद्याधरों की ही हुई और यह आज भी जारी है। आपकी बातें यह मानने के लिए मजबूर करती हैं कि लोकविद्या में शक्ति है, लेकिन सवाल यह है कि वह शोषण की शिकार क्यों है और इस शोषण से उसे छुटकारा कैसे मिले?

उ0 यही तो सबसे महत्त्व का सवाल है, लेकिन उसका जवाब इतनी जल्दी नहीं मिलेगा। पहले लोकविद्या के बारे में अधिक जानने की आवश्यकता है। आज हम यहीं इस वार्त्ता को खत्म करेंगे। रात काफी हो चुकी है।

प्र0 मुझे आपसे वार्त्ता करने में बहुत–सी वे बातें अर्थपूर्ण नज़र आने लगी हैं जिन्हें मैं देखकर अनदेखा करता रहा हूँ। सच तो ये है कि इन साधारण–सी बातों को भी देख न पाने का मुझे अफसोस हो रहा है। आपके साथ इस वार्त्ता को जारी रखना चाहता हूँ। कल सुबह मुझे घर जाना आवश्यक है। क्या दो दिनों बाद मैं यहीं आ जाऊँ और इस वार्त्ता को हम आगे बढ़ायें?

उ0 ज़रूर।

3

लोकविद्या क्या है?

हरिहरपुर में दो दिन बाद लोग फिर से वरुणा के तट पर बैठे। संख्या में कोई खास बढ़ोत्तरी तो नहीं हुई लेकिन शहर से 2–3 लोग शामिल हुए। मायूसी का आलम भी बना रहा, लेकिन एक ज्ञापन तैयार कर स्थानीय प्रशासन को सौंपने पर सहमति बनी। हमारे प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता ने ज्ञापन को लिखने में सहयोग दिया और बैठक के बाद वार्त्ता को आगे बढ़ाने के लिए पुनः जम गये। इस बार कुछ और लोग भी वार्त्ता में शामिल हो गये।

प्र0 पिछले दो दिनों आपसे हुई वार्त्ता पर मैं विचार करता रहा। अपने मित्रों के बीच भी मैंने बात की। हम लोग इस बात पर विचार करते रहे कि सरकारें लोगों को शिक्षित करने में आजादी के बाद से निरन्तर प्रयत्नशील हैं, लेकिन 60 वर्षों के बाद भी आबादी के महज लगभग 40 फीसदी लोगों को भी शिक्षित नहीं कर पाई हैं? इसका मतलब, मात्र क्रियान्वयन में नहीं बल्कि सोच में ही कोई कमी है। यदि लोकविद्याधरों को हम ज्ञानी का दर्जा दें और यह मान्यता दें कि उनके पास अलग तरह का ज्ञान है, और वे इस ज्ञान से दूसरों को शिक्षित भी करते हैं, तो शिक्षित लोगों की संख्या लगभग 100 फीसदी हो जाती है। इससे समाज में आत्मविश्वास का पैमाना बहुत ही ज्यादा बढ़ जायेगा। इस विचार से मैं बहुत उत्तेजित हूँ।

उ0 हाँ, आप एकदम सही हैं। वास्तव में लोगों पर शासन करने का, उनका शोषण कर पाने का एक तरीका यह रहा है कि उन्हें दीन–हीन बनाये रखिये और उनके दीन–हीन होने का प्रचार भी हो ताकि उनका आत्मविश्वास घटता ही रहे। जब–तब दान देकर या छोटी–मोटी राहत देकर उनका समर्थन हासिल करने के तरीके से हम वाकिफ़ हो चुके हैं।

प्र0 हम लोगों के मन में लोकविद्या की शक्ति को गहराई से जानने की इच्छा तीव्र हुई है। लेकिन साथ ही कई सवाल मन में उभर रहे हैं। मित्रों से वार्त्ता के बाद मैंने इन सभी सवालों को संजोया है और उन सवालों को आपके सामने रखने की कोशिश करूँगा। क्या आज की वार्त्ता इन सवालों से शुरू की जाय?

उ0 ज़रूर। आप बेहिचक सवाल रखें। हो सकता है सभी सवालों का जवाब मैं न दे सकूँ , लेकिन उन सवालों पर विचार करने का मौका हमें मिलेगा और यह अच्छी बात होगी।

प्र0 हमारे देश की बहुसंख्य जनता लोकविद्याधर परिवारों से है। यह जनता जाति, धर्म, भौगोलिक क्षेत्र आदि में बँटी हुई है। लोकविद्या को मान्यता देने में कहीं हम इन बन्धनों में फिर से जकड़ तो नहीं जायेंगे? कहीं ऊँच–नीच की श्रेणी को हम मजबूत तो नहीं कर देंगे?

उ0 यह महत्त्वपूर्ण पक्ष है जिसके बारे में स्पष्ट होना बेहद जरूरी है। लोकविद्या किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय के बंधन नहीं मानती, यह मैंने पहले ही कहा है। जहाँ तक सोच जाती है उससे यही साफ होता है कि लोकविद्या का स्वभाव आंचलिक होता है। जिस तरह भाषा आंचलिक होती है और जाति, धर्म, सम्प्रदाय के बंधन को नहीं स्वीकारती, उसी तरह लोकविद्या है। लोकविद्या को अगर हम मात्र हुनर के रूप में देखेंगे तो यह बहुत सीमित नज़र आयेगी और तब यह जाति, धर्म, सम्प्रदाय में फँसी ही मालूम पड़ेगी। जो ये है नहीं। लोकविद्या को अगर ज्ञान के रूप में देखेंगे और किसी किसान, कारीगर या आदिवासी के कार्य करने की पद्धति को बारीकी से परखेंगे तो आप पायेंगे कि लोकविद्या मात्र हुनर नहीं है, बल्कि एक ऐसा ज्ञान है जिसमें तर्क का एक निश्चित प्रकार है और इसके अपने मूल्य हैं। यूँ कहें कि लोकविद्या में एक विश्वदृष्टि है।

प्र0 कुछ विस्तार से बतायें तो शायद समझने में आसानी होगी।

उ0 एक अंचल के लोग आपस में विचार–व्यवहार का आदान–प्रदान किसी एक भाषा से करते हैं जिसे उस अंचल के सभी लोग चाहे जिस व्यवसाय, धर्म, जाति के हों, जानते हैं। उसी तरह लोकविद्या व्यवसाय, जाति, धर्म के बन्धन नहीं मानती क्योंकि लोकविद्या के तर्क और मूल्य अंचल के सभी लोगों के जीवन, विचार, व्यवहार का आधार होते हैं। इन मूल्यों को तोड़कर वे ज़िन्दा रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते। यानि जाति, धर्म, व्यवसाय में बँटे लोकविद्याधरों में जो एकता का सूत्र है, वह उनके ज्ञान में बसे तर्क और मूल्य में है, न कि मात्र हुनर में।

प्र0 तो क्या लोकविद्या अंचल की सीमाओं में बँधी है?

उ0 नहीं, ये बात भी नहीं है। लोकविद्या स्थान और काल के अनुसार स्वयं को विभिन्न रूपों में उद्घाटित या प्रकट करती है, लेकिन इसके अंतर्निहित मूल्य, तर्क और सत्ता के प्रकार एक से रहते हैं। जैसे हमारे यहाँ यानि भोजपुर की लोकविद्या कर्नाटक, केरल या उडीसा की लोकविद्या से रूप में बहुत भिन्न है, लेकिन इनमें बसे तर्क और मूल्य के प्रकार एक से ही हैं। उसी तरह अफ्रीका या रूस की लोकविद्या केवल रूप में ही भिन्न होगी। लोकविद्या में विभिन्न अंचलों के बीच एकता का यही प्रकार है।

प्र0 वह कैसे?

उ0 किसी एक अंचल में लोकविद्याधरों के बीच जो रि ता लोकविद्या रचती है, उसी तरह का रि ता लोकविद्या विभिन्न अंचलों के बीच रचती है।

प्र0 यह किस प्रकार का रि ता है?

उ0 यह भाईचारे का रि ता है। एक विद्या का दूसरी विद्या के साथ मैत्री का सम्बन्ध है जिसमें लोकसम्मत होने की कसौटी का आग्रह है, परस्पर समृद्धि का मूल्य है। लोकविद्या सतत् इन आधारों पर रि तों का निर्माण और नवनिर्माण करती रहती है।

प्र0 ये हुनर, तर्क और मूल्य में भेद को अधिक स्पष्ट करें, तो बात साफ होगी।

उ0 इसे समझाने की कोशिश करता हूँ , लेकिन इसके लिए आपको सब्र रखना होगा।

प्र0 जी, मुझे मंजूर है।

उ0 लोकविद्या का तर्क पहले लें। लोकविद्या का तर्क उन सब तर्कों से अलग है जो तर्कशास्त्र के अन्तर्गत कालेजों में पढ़ाये जाते हैं। पश्चिमी देशों की विद्या में तर्क वैध है या नहीं यह बात उसके आंतरिक सम्बन्धों पर आधारित होती है तथा ज्ञान से, समाज से या सत्य से उसका सम्बन्ध होने का आग्रह नहीं होता। उनकी विद्या के अन्तर्गत किसी वस्तु की पहचान वह किन चीजों से बनी है और उसकी बनावट कैसी है इसी से की जाती है। लोकविद्या में ऐसा नहीं है। लोकविद्या में तर्क का विधान कैसा है? लोकविद्या का तर्क समाज के मूल्यों, प्रेरणा के स्रोतों, उद्देश्यों और तात्कालिक जरूरतों से अपने को अलग नहीं रखता। एक तरह से लोकविद्या में तर्क वही सही है जो लोकसम्मत है। इसे ही सत्य सापेक्ष कहा है। इसे हम लोकविद्याधरों के कार्यों में देख सकते हैं। यदि किसी किसान से उसके खेत की मिट्टी के बारे में पूछा जाय तो वह यह बता सकता है कि पानी के साथ उस मिट्टी का व्यवहार कैसा है, कौन–सी फसलें उसमें अच्छी होंगी, कैसी खाद उसमें डालनी चाहिए, कैसी नहीं चाहिए, जीवों पर इसका क्या असर होगा, मनुश्य के लिये तात्कालिक और दूरगामी लाभ या हानि क्या होंगे, इत्यादि। उसकी समझ और तर्क का प्रकार सतही नहीं है क्योंकि मौसम, संसाधन, बाजार या खुद उस मिट्टी में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप वह अपने कार्य, उत्पादन, खेती

के तरीके आदि में जरूरी बदलाव भी ले आता है। यही नहीं, अपने प्रत्येक कार्य और प्रक्रियाओं से प्रकृति और अन्य मनुष्यों के साथ सम्बन्धों पर होने वाले प्रभावों को अपनी विद्या में वह महत्त्वपूर्ण स्थान देता है और ये सम्बन्ध न बिगड़ें इसके लिए अपनी विद्या में सतत् सुधार करता रहता है। कुछ इसी तरह का अनुभव मिल सकता है यदि किसी आदिवासी से जंगल की पेड़–पत्तियों, नदी, पहाड़ और जीवों के बारे में पूछा जाय। वह अपनी समझ का आधार उनके लोकहितकारी गुणों से शुरू करता है और उनके साथ सम्बन्ध को मजबूत करने वाली क्रियाओं का ज़िक्र भी करता जाता है। कारीगरों के साथ वार्त्ता से भी यही उभरकर आता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह इस तरह से रख सकते हैं कि लोकविद्या में किसी भी वस्तु की समझ का तरीका अन्य वस्तुओं के साथ, लोगों के साथ, पूरी दुनिया के साथ उस वस्तु के सम्बन्धों के मार्फत होता है। और यह समझ निर्जीव नहीं होती, बल्कि सामाजिक मूल्यों और लोकहित के साथ एक किस्म की एकता में रहती है। तर्क की यह विधा लोकविद्याधर समाज के सभी जाति, धर्म, सम्प्रदायों में समान रूप से मिलती है।

प्र0 यह बात तो नई है और महत्त्व की है। जैसे स्कूल में पढ़े किसी विद्यार्थी से जब हम पूछते हैं कि हवा क्या है, या पानी क्या है, तो वह पहले उसके तत्त्वों को बताता है जिनसे हवा बनी है, जैसे– ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आदि और ये तत्त्व हवा या पानी में किस तरह से सम्बन्ध बना रहे हैं, इसे बताता है। यानि वस्तु के आंतरिक गठन पर महत्त्व देता है और इस गठन के सन्दर्भ में वस्तु के गुण की चर्चा करता है। लोकविद्या में ठीक इसका उल्टा है, यानि वस्तु का अन्य वस्तुओं के साथ व्यवहार का सम्बन्ध प्रमुख है। लोकविद्या इस तरह लोकहित का तत्त्व शुरू से ही शामिल कर लेती है। या यूँ कहें कि लोकविद्या शुरू से ही लोकहित की कसौटी का इस्तेमाल करते हुये वस्तुओं को जानने का ज्ञान है। यह बहुत ही बड़ी बात है। आप इसे अगड़ी विद्या क्यों मान रहे हैं यह बात अब कुछ–कुछ समझ में आ रही है। हाँ, मैं मूल्य और हुनर के भी बारे में जानने को उत्सुक हूँ।

उ0 आप बड़ी जल्दी बातों को ग्रहण कर रहे हैं। लोकविद्या में तर्क, मूल्य और हुनर को अलग–अलग करके नहीं देखा या समझा जाता। वे एक–दूसरे में इस तरह समाहित होते हैं कि उन्हें अलग करने में लोकविद्या की आत्मा ही नष्ट हो जाती है। कुछ लोग लोकविद्याधरों के हुनर को अलग कर उसकी क्षमता, गुणवत्ता, उपयोगिता बढ़ाने के प्रयास करते रहे हैं। इनमें से कुछ लोग सफल भी हुए हैं। लेकिन ऐसा करने वाले ज्यादातर लोग शिकायत करते मिलते हैं कि लोकविद्याधर हमारे सुझाये गये सुधारों को नहीं अपनाते। लोकविद्याधरों के न अपनाने के पीछे उनके अपने ज्ञानगत कारण हो सकते हैं, इस पर वे ध्यान ही नहीं देते। उनके हुनर को मात्र श्रमपूर्ण कार्य का प्रकार समझते हैं। उनका हुनर एक ज्ञानपूर्ण क्रिया है, इसकी पहचान ही नहीं कर पाते।

प्र0 इसका मतलब तो यह हुआ कि लोकविद्या में श्रम और बुद्धि का विभाजन नहीं है। यानि श्रमपूर्ण कार्य और बुद्धिपूर्ण कार्य अलग–अलग हैं, ऐसी कोई सोच लोकविद्या में नहीं है।

उ0 बिल्कुल ठीक कहा। यह विभाजन पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। लोकविद्या में तो हर कार्य ज्ञान का कार्य है। इसलिए लोकविद्याधर सभी ज्ञानी हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में कारखानों में बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा और उसमें जो लोग केवल श्रमपूर्ण कार्य करते रहे, उन्हें मजदूर कहा जाने लगा। इस तरह पूँजीवादी व्यवस्था ने श्रम और बुद्धि को अलग–अलग कर दिया। चूँकि हम अब पूँजीवादी व्यवस्था में रहते हैं, उन्हीं की शिक्षा लेते हैं और सभी श्रमपूर्ण कामों को मज़दूरी के काम मानते हैं और इसके चलते लोकविद्याधरों को भी मजदूर (श्रमिक) ही समझने की भूल कर बैठते हैं।

प्र0 लोकविद्या का परिचय पाना, यह हम सबके लिए एक नया उत्साह पैदा कर रहा है। जिन लोगों को कहीं भी कोई भी जाहिल, गँवार, देहाती, मजूर, मोटा काम करने वाले कहकर

सम्बोधित कर रहे हैं, उनमें लोकविद्या का विचार गज़ब का आत्मविश्वास पैदा कर सकता है। ये सब ज्ञानी हैं, यह विचार ही समाज में ऊर्जा पैदा कर देगा। वरना आज की शिक्षा व राजनीति ने तो इन्हें भेंड़–बकरी ही कहा है। यह अपमान बर्दाश्त न करने की हिम्मत पैदा की जा सकती है, यह उम्मीद बन रही है। आप अपनी बात को आगे बढ़ायें, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जा रही है।

उ0 देखिये, लोकविद्या का कोई ग्रन्थ या शास्त्र तो है नहीं जिसको पढ़कर या किसी से सुनकर कोई लोकविद्या का विद्वान हो जाय। लोकविद्या सामान्य जीवन में बसती है। जीवन को समझते हुए ही इसे समझा जा सकता है। जितना गतिशील जीवन है उतनी ही गतिशील लोकविद्या भी है।

प्र0 हमारी शिक्षा में हमने कभी भी किसान–कारीगर या आदिवासियों के कार्यों को उनके ज्ञान के रूप में देखना नहीं सीखा है। हमारी परम्परा की जानकारी हमें केवल पुराने ग्रन्थों की जानकारी से दी गई है। ज्ञान का इतना बड़ा भण्डार हमारी शिक्षा में शामिल ही नहीं है, यह तो बड़ी विडम्बना है।

उ0 सही बात है। स्कूल–कॉलेज की शिक्षा में हमें अपने समाज का पूर्व–परिचय प्राचीन ग्रन्थों का हवाला देकर कराया जाता है और इसे ही हम अपनी परम्परा मान बैठते हैं। लोकविद्या दृष्टिकोण से परम्परा मात्र वही नहीं है जो शास्त्र (प्राचीन ग्रन्थ), धार्मिक क्रियाओं, सामाजिक व्यवहारों आदि में प्रकट होती है। ये तो परम्परा का बहुत छोटा हिस्सा होते हैं और ये प्रायः परम्परा के मृत हिस्सों का बोझ भी ढोते रहते हैं। लोकविद्या के अनुसार परम्परायें तो सामान्य जीवन की ज्ञान–क्रियाओं में बसती हैं। ये जीवन्त होती हैं। लोकविद्या सतत् परम्परा को नवीन करती रहती है। पुराने ज्ञान से मृत हिस्सों को त्यागना और नवीन जरूरतों के हिसाब से नये हिस्सों को जोड़ना लोकविद्याधर निरंतर करते रहते हैं। यह लोकविद्या का बड़ा हिस्सा है।

प्र0 मैं शर्मिन्दा हूँ कि मैं बार–बार लोकविद्या को पुरानी और रूढ़िवादी विद्या के रूप में देखता आया हूँ। लेकिन मेरे मन का सन्देह अभी पूरी तरह से दूर नहीं हुआ है। आपसे अब कब मिलूँ?

उ0 मुझे लगता है कि अब तक जो बातें हुई हैं, उस पर कुछ चिन्तन करना चाहिए। लोकविद्याधरों के बीच, उनके साथ वार्त्ता करके इन बातों पर अधिक सफाई हासिल कर सको तो अच्छा होगा। इस सप्ताह तो मिलना संभव नहीं होगा, मुझे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ पूरी करनी हैं। लेकिन अगले शुक्रवार शहर में स्टेशन के पास ठेले–गुमटी वाले एकत्र हो रहे हैं। उन्हें वहाँ से हटा दिया गया है। उन पर रोजी–रोटी का संकट है। वे लोग क्या सोच रहे हैं यह जानने के लिए मैं जाऊँगा। हो सके तो तुम भी वहीं आ जाना।

प्र0 ठीक है, मैं आऊँगा। अपने साथ एक–दो मित्रों को भी लाऊँगा।

उ0 स्वागत है।

4

लोकविद्याकरण

शुक्रवार की शाम। शहर के स्टेशन पर भीड़ ही भीड़ और शोर ही शोर। बस, ट्रक और ऑटो की तेज़ रफ्तार और धूल के गुबार। साइकिल और स्कूटर वाले इस भीड़ में आड़े–तिरछे भाग रहे हैं। लोग घर जाने की जल्दी में हैं। इस भागम–भाग में ही सड़क किनारे पटरी से हटकर एक बन्द दुकान के सामने चबूतरे पर कुछ लोग बैठे हैं। इसी में हमारे प्रश्नकर्त्ता, उनके दो मित्र तथा उत्तरदाता भी हैं। एक–एक करके लोग आ रहे हैं और बैठक खत्म होते–होते लगभग 70–80 लोग जमा हो चुके थे। कई दुकानदारों ने बात रखी। स्टेशन और सड़क के सुन्दरीकरण ने उनकी रोजी–रोटी छीन ली है। प्रशासन कोई बात नहीं सुनता और राजनैतिक दल मौन हैं। क्या करें? कई लोगों ने जोशपूर्ण भाषण दिये। आखिर तक लड़ने की बात रखी। बैठक खत्म होने तक एक माँगपत्र बनाकर और एक प्रतिनिधि मण्डल का चयन कर प्रशासन को सौंपने की बात तय हुई। बैठक खत्म होने पर प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता उसी चबूतरे पर जम गये।

प्र0 यह तो कठिन स्थिति है। इस स्थिति से कैसे उबरेंगे? कहाँ जायेंगे ये लोग?

उ0 यह तो एक नई दुनिया बनाई जा रही है, जिसकी कीमत ये लोग भी चुका रहे हैं।

काफी देर तक मौन रहा...

प्र0 लेकिन यह तो अन्याय है। (उत्तरदाता ने स्वीकृति में सिर हिलाया। कुछ देर फिर खामोशी रही...) कल की बात को आगे बढ़ाऊँ?

उ0 हाँ।

प्र0 मैं विस्मित हूँ कि लोकविद्या में हर संकुचित ढाँचे, मूल्य और परम्परा को भेदकर आगे बढ़ जाने का गुण है और लोकविद्याधर इसे बड़ी शालीनता से करते रहते हैं। ठीक वैसे ही जैसे प्रकृति अपने कार्य करती रहती है।

उ0 हाँ, यही बात है।

प्र0 यह तो मैं अब समझ रहा हूँ कि लोकविद्या मृत परम्परा नहीं ढोती है, बल्कि उसमें से जो योग्य है उसे अपना लेती है और बेकाम के हिस्सों को त्याग देती है। लेकिन यह नये स्थानों या अन्य सभ्यताओं से आये ज्ञान के प्रति क्या रुख अपनाती है?

उ0 लोकविद्या का स्वभाव उदार है और बाहरी ज्ञान के लिये यह अपने दरवाजे खुले रखती है। उसमें से जो योग्य हैं यानी लोकविद्या के मूल्य–तर्क आदि में समाहित करने योग्य हैं उन्हें स्वीकार कर लेती है, शेष को त्याग देती है।

प्र0 साइंस के प्रति भी इसका यही रुख है?

उ0 हाँ।

प्र0 लेकिन आपने पहले यह कहा है कि साइंस ने लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा कभी नहीं दिया, उल्टे इसका तिरस्कार किया। यही नहीं साइंस ने लोकविद्याधरों पर आर्थिक गरीबी और ज्ञान की गरीबी लाद दी है। ऐसी स्थिति में भी साइंस के प्रति लोकविद्या का रुख मैत्री का ही होगा?

उ0 हाँ, लोकविद्या सभी ज्ञानधाराओं के साथ भाईचारा बनाती है। वह किसी भी ज्ञान धारा के साथ बैर नहीं रखती।

प्र0 मुझे यकीन नहीं होता। इसे जीवन में कैसे देख सकेंगे?

उ0 देखिये, यह तो रोजमर्रे के जीवन में आप देख सकते हैं। जब विश्वविद्यालय से पढ़े–लिखे लोग किसी किसान या कारीगर को उत्पादन बढ़ाने के गुन सिखाने जाते हैं तो किसान/कारीगर कभी उनका अपमान नहीं करते, उनकी कही बातों को सम्मान से सुनते हैं। उसमें से उन्हें जो लेने योग्य लगता है वो ले लेते हैं। जो न लेने योग्य होता है उसके

बारे में कोई कड़वी या अपमानजनक बात नहीं कहते। जबकि साइंस वाले लोकविद्याधरों की विद्या को अंधविश्वास, अज्ञान और पिछड़ापन करार देते हैं। उनका मजाक उड़ाते हैं। अक्सर अपमान भी करते हैं।

प्र0 हाँ, ऐसा मैंने भी महसूस किया है। लेकिन सर्वथा भिन्न समाजों या सभ्यताओं से ज्ञान लेने का लोकविद्या का तरीका क्या है?

उ0 परम्परा या आधुनिक ज्ञान दोनों से ही लोकविद्या लेती है और उसका लोकविद्याकरण कर देती है। यह एक खुली प्रक्रिया है। ये कार्य कुछ गिने–चुने लोग ही करते हैं ऐसा नहीं है। यह सामाजिक प्रक्रिया है। इसमें अनगिनत लोग बिना किसी प्रचार अथवा धन की अपेक्षा किये लगे रहते हैं। समाज आधारित ज्ञान का यह विशेष गुण है।

प्र0 लोकविद्याकरण से क्या मतलब है?

उ0 लोकविद्याकरण, यानि लोकविद्या में जज़्ब कर लेना है। जिस तरह अलग–अलग धारायें गंगा में मिलकर गंगा हो जाती हैं, उसी तरह लोकविद्या में जज़्ब हुई विद्या लोकविद्या हो जाती है। यूँ कहें कि विभिन्न ज्ञान धाराओं को लोकविद्या के मूल्य–तर्क आदि में समाहित या शामिल करना लोकविद्याकरण है। चूँकि ज्ञान का यह नवीनीकरण या लोकविद्याकरण अनगिनत लोगों द्वारा समाज में होता है इसलिए ज्ञान पर नियंत्रण भी समाज के सामान्य लोगों का रहता है। यह लोगों की विद्या हो जाती है। यही लोकसम्मत विद्या है। समाज में अंदरूनी या बाहरी ज्ञान को लोकविद्या बनाने की क्रिया की तुलना मनुष्य के शरीर में हो रही पाचन क्रिया से की जा सकती है। मुँह में चबा लेने मात्र से भोज्य पदार्थ शरीर का हिस्सा (समाहित) नहीं होते, बल्कि पाचन–तंत्र के असंख्य अवयव शरीर के अन्य अंगों के साथ सहयोग में जब अपनी–अपनी भूमिका निभाते हैं और भोजन के ग्राह्य तत्त्व को अलग करते हैं, तभी शरीर को पुष्ट करने वाले तत्त्व और शक्ति देने वाली ऊर्जा बन पाती है। समाज की शक्ति का आधार भी लोगों के नियंत्रण में ज्ञान के नवीनीकरण और निर्माण में है। यह लोकविद्याकरण है।

प्र0 लेकिन लोकविद्या में साइंस या आधुनिक ज्ञान का समावेश मुश्किल होगा। साइंस ने हमें इतना कुछ दिया है उसे छोड़ना भी मुश्किल है।

उ0 हाँ, मुश्किल तो है। लेकिन यह मुश्किल तो लोकविद्या में किसी कमी के चलते नहीं है, बल्कि समाज में लोकविद्या के प्रति अविश्वास के चलते है। और आपका सवाल यह थोड़े ही है कि जो साइंस ने दिया है उसका बचाव कैसे हो? सवाल तो यह होना चाहिए कि साइंस ने जो नाजायज (गरीबी) दिया है, उससे मुक्ति कैसे हो और जो दिया है, उसका लोकविद्याकरण कैसे हो।

प्र0 हाँ, यह तो ठीक है। लेकिन मुक्ति का रास्ता लोकविद्या में है इस पर विश्वास कैसे हो? मैं वापस पुराने सवाल पर जाना चाहता हूँ। लोकविद्या में आप शक्ति का रूप कैसा और किस प्रकार से देखते हैं, इसे जाने बिना बात पूरी तरह समझ में नहीं आ पा रही है।

उ0 हाँ, अब हम मूल बात पर आ गये हैं, ऐसा मुझे लगता है। आपके सवाल को मैं दूसरे शब्दों में रखूँ तो शायद यह सवाल यूँ होगा कि लोकविद्या में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शक्ति का रूप क्या है। और सार्वजनिक जीवन में लोकविद्या लोकशक्ति का रूप ले, इसके रास्ते कैसे बनेंगे?

प्र0 हाँ, ये सवाल मेरे मन को मथ रहे हैं।

उ0 इन सवालों के जवाब में ही मैं आपके पहले पूछे गये सवाल का जवाब देने की कोशिश करूँगा कि लोकविद्या का शोषण क्यों हो रहा है और इससे छुटकारा कैसे मिले? यही हमारा लक्ष्य भी है।

प्र0 अगली बार हम कब मिलें?

उ0 आप बतायें?

प्र0 मेरे गाँव में कुछ लोग हैं जो इन सवालों पर वार्त्ता में शामिल होना चाहेंगे। मेरे गाँव आप आयें तो यह मेरा सौभाग्य होगा।

yksdfo|kdj.k % 20

उ0 बेशक़, मुझे भी खुशी होगी। क्या रविवार की शाम ठीक रहेगी?

प्र0 हाँ, हमारे लिये ठीक है।

5

लोकविद्या की सामाजिक शक्ति

गाँव नेवादा में बाँसवारी से हटकर एक चबूतरा है। इस चबूतरे से सटे नीम के पेड़ से इतनी छाँव हो जाती है कि दुपहरिया में आराम से बैठा जा सके। इस छाँव में 7–8 युवकों की टोली बैठी है। ये प्रश्नकर्त्ता के मित्र हैं। इनमें दो युवक अभी पढ़ रहे हैं, एक इलाहाबाद में और एक वाराणसी में। फिलहाल घर आये हुए हैं। एक युवक की नज़दीक के बाजार में बालू–गिट्टी की दुकान है। दो युवक साड़ी बुनाई का काम करते हैं। शेष दो सब्जी की खेती करते हैं। सुबह 10.00 बजे से ही यह टोली एक बाहरी मेहमान के साथ गाँव में घूम रही है और भोजन के बाद यहाँ पसर कर बैठी है। मेहमान हमारे उत्तरदाता ही हैं।

गाँव की खेती–कारीगरी पर बहुत–सी बातें हुईं। गाँव के युवकों के रोजगार और शिक्षा से सम्बन्धित भी कुछ जानकारी ली गई। इसके बाद प्रश्नकर्त्ता ने पहल लेकर वार्त्ता को शुरू करने की घोषणा की।

प्र0 आज हम लोकविद्या की शक्ति के बारे में बात करने जा रहे हैं। इस शक्ति को हम कैसे पहचान या देख सकते हैं?

उ0 लोकविद्या में शक्ति के उस रूप को देखना है जो लोकशक्ति का आधार हो। यानि लोकविद्या की सार्वजनिक शक्ति को देखना है। यह शक्ति ही अन्याय को चुनौती देने की ताकत रखती है। समाज को अधिक न्यायपूर्ण बनाने का बीड़ा उठा सकती है। हमें समाज के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में लोकविद्या की शक्ति के रूप को पहचानना और उसे प्रकट करना या सार्वजनिक करने का कार्य करना है। हम एक–एक क्षेत्र को लेकर धीरे–धीरे इसे पहचानने की कोशिश करेंगे।

प्र0 ठीक है। क्यों न राजनैतिक क्षेत्र से शुरुआत की जाये?

उ0 नहीं, हम सामाजिक क्षेत्र से शुरुआत करेंगे। लोकविद्या सामाजिक है। यहीं से शुरुआत करना ठीक रहेगा। वैसे कहीं से भी शुरुआत की जा सकती है। पहले तो इस बात को साफ समझ लेना ज़रूरी है कि पिछले 20 वर्षों में हमारा समाज बहुत बदल गया है। समाज निरंतर बदलता रहता है। हमें इस निरंतर बदलते समाज के स्वभाव को पहचानना है। सामाजिक भेदभाव, ऊँच–नीच से मुक्ति और बराबरी के लोक–आधारित मूल्यों की पहचान करनी है। अगर इन्हें हमने ठीक से पहचान लिया तो सामाजिक कार्य और जिम्मेदारियों को पहचानना मुश्किल नहीं होगा।

प्र0 हाँ, यह तो ठीक ही है।

उ0 पिछले 20 वर्षों में जो महत्त्वपूर्ण घटना हुई है वह ये कि समाज में ज्ञान के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन आया है और इस परिवर्तन ने समाज को समझने का एक नया रास्ता खोल दिया है। अभी तक हम सामाजिक ग़ैर–बराबरी को पूँजी, जाति, धर्म, क्षेत्र के सन्दर्भों में समझते आये हैं और इन्हीं आधारों पर न्याय के रास्तों को गढ़ने की कोशिश करते आये हैं। क्या यह सही नहीं है?

प्र0 हाँ, यह तो सही है। इन सन्दर्भों के साथ ही हमारी राजनीति को आकार मिला है। इसी के चलते आज साम्यवादी, क्षेत्रीय, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ी जातियों के नेतृत्वकारी दल सत्ता में हैं।

उ0 सही बात है। मैं मानता हूँ कि यह बड़ी उपलब्धि रही है। चिन्ता इस बात की है कि इन सन्दर्भों के साथ पैदा हुई चेतना के स्तर की सीमायें अब स्पष्ट होने लगी हैं। इन सन्दर्भों से पैदा हुई चेतना अगर कुछ घटकों तक ही सिमट जाय तो ये सामाजिक चेतना के स्तर तक पहुँच नहीं पाती और सामाजिक बदलाव की शक्ति ग्रहण नहीं कर पाती। इसके अभाव में इनकी राजसत्तायें पूँजीवादी शक्तियों की सेवा में जाने को मजबूर हो जाती हैं। क्या आज हम यही होता हुआ नहीं देख रहे हैं?

प्र0 हाँ, यह बात तो है।

उ0 इस चेतना को पुनः सामाजिक स्तर पर ले जाने की ज़रूरत है। यानि समाज में मनुष्य के सम्मान और बराबरी के एक नये सामाजिक विचार को पैदा करने की जरूरत है। यूँ कहें कि सामाजिक विचार के नवीनीकरण, निर्माण और पुनर्निर्माण का समय आ गया है।

प्र0 हाँ, सामाजिक विचार में ज़रूर कुछ बासीपन आ गया है। लेकिन क्या आप ये कहना चाह रहे हैं कि ये सभी सन्दर्भ बेमतलब हो गये हैं! जबकि समाज में ये ग़ैर–बराबरियाँ विकराल रूप में आज भी मौजूद हैं।

उ0 नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि जाति, धर्म, पूँजी पर आधारित ग़ैर–बराबरी को नज़रन्दाज कर नये सामाजिक विचार का निर्माण करना है। इन ग़ैर–बराबरियों को समाप्त करना तो हमारा लक्ष्य है, लेकिन समाज में कुछ नई घटनायें हो रही हैं जिनके चलते ग़ैर–बराबरी के रिश्तों में नये आयाम जुड़ गये हैं। ये नये आयाम शक्तिशाली भी हैं, प्रभावी भी हैं। पहले के सामाजिक विचारों में इनसे मुकाबला करने के तत्त्व नहीं है। ऐसे में हमें उन सामाजिक विचारों को गढ़ना है जो नई अन्यायकारी ग़ैर–बराबरी के साथ पुरानी चली आ रही ग़ैर–बराबरियों को भी खत्म करने की ताकत रखते हों।

प्र0 ये नई घटनायें कौन–सी हैं?

उ0 पिछले वर्षों में दुनिया में कम्प्यूटर–इंटरनेट और मोबाइल के आगमन से एक नये युग की शुरुआत हुई है। इस युग को सूचना युग कहा जा रहा है। इन यंत्रों को सूचना प्रौद्योगिकी कहा जाता है। पिछली सदी को, यानी 20वीं सदी को हम औद्योगिक युग के नाम से जानते हैं। 21वीं सदी सूचना युग कही जायेगी। जिस समाज में कम्प्यूटर–इंटरनेट और मोबाइल का ज्यादा इस्तेमाल होगा, वह उतना ही ज्यादा प्रगतिशील, विकसित और ज्ञान–आधारित समाज कहलायेगा, इस बात का प्रचार है।

प्र0 हाँ, इस बात को तो हम टी0 वी0 और अखबारों से जानते हैं। लेकिन आप इसे हमारे सामाजिक जीवन की बड़ी घटना क्यों मानते हैं?

उ0 इसलिये कि सूचना युग ने ज्ञान के क्षेत्र में एक बड़ी हलचल पैदा कर दी है और इस हलचल में लोकविद्या एक नये सामाजिक विचार को पैदा करने की शक्ति संजोये दिखाई देती है।

प्र0 वह कैसे?

उ0 सूचना युग में एक नये ज्ञान का उदय हुआ है। इस ज्ञान को ज्ञान–प्रबन्धन का नाम दिया गया है। ज्ञान–प्रबन्धन कम्प्यूटर–इंटरनेट और मोबाइल यानी सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से किया जाता है। ज्ञान–प्रबन्धन की पढ़ाई आज सबसे महंगी पढ़ाई है और इस ज्ञान के बल पर मिलने वाली नौकरियाँ सबसे मोटी तनख़्वाह की हैं।

प्र0 हाँ, बहुत लड़के इस ज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने की आकांक्षा रखते हैं। साइंस पढ़ने तो अब बहुत कम ही लड़के जाते हैं।

उ0 सही बात है। यानी ज्ञान के क्षेत्र में अब साइंस को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान नहीं माना जा रहा है। अभी तक यानी लगभग पूरी 20वीं सदी में साइंस को ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान माना जाता रहा है। हमारे जैसे देश में लोकविद्या को रौंदकर, कुचलकर, ध्वस्त कर साइंस को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का दर्जा मिल पाया है या यूँ कहें कि दिया गया है। लेकिन अब साइंस के ऊपर भी एक नया ज्ञान आ चुका है। ज्ञान–प्रबन्धन के आ जाने से समाज में ज्ञान के क्षेत्र में ऊँच–नीच का एक नया ढाँचा बनता नज़र आ रहा है, जिसके चलते बड़ी हलचल है।

प्र0 इससे लोकविद्या को क्या फायदा है?

उ0 ऐसा है कि साइंस की दुनिया ने लोकविद्या को दबा दिया था। साइंस में लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा कभी नहीं मिला। लोकविद्या का दमन करके ही साइंस ने हमारे जैसे समाजों में विस्तार पाया है। लेकिन ज्ञान–प्रबन्धन लोकविद्या का दमन करने के पक्ष में नहीं है। ज्ञान–प्रबन्धन हर सूचना को ज्ञान का दर्जा देता है। इस तरह लोकविद्या को भी वह ज्ञान का दर्जा देता है।

प्र0 यह तो लोकविद्या के लिये अच्छी बात है।

उ0 हाँ, यह तो अच्छी बात है। लेकिन इसकी वह बहुत बड़ी कीमत माँग रहा है।

प्र0 वह क्या है?

उ0 इसकी बात हम आगे करेंगे। यहाँ यह समझने की ज़रूरत है कि सूचना युग में ज्ञान–प्रबन्धन, साइंस और लोकविद्या के बीच सम्बन्धों का एक नया ढाँचा बन रहा है जिसके चलते सामाजिक रिश्तों में और सामाजिक सत्ता के प्रकारों में बदलाव आ रहा है और ये मिलकर एक ऐसा अवसर पैदा कर रहे हैं जिसमें लोकविद्याधर एकजुट होकर ज्ञान के क्षेत्र में और समाज में स्वयं के लिये बराबरी और प्रतिष्ठा के स्थान को हासिल कर सकते हैं। यही नहीं वे समाज को एक अधिक न्यायपूर्ण ढंग से पुनर्संगठित करने का विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं।

प्र0 आपने तो बेहद उत्साहजनक चित्र खींच दिया है। इस चित्र को और अधिक स्पष्टता से देख पाने के लिये हम बेताब हैं।

उ0 इस बात को यूँ समझना होगा कि ज्ञान के क्षेत्र में साइंस का राज टूट जाने से समाज में पश्चिमी (यूरोपीय) मूल्यों के प्रति आग्रह भी टूटा है। यह ज़रूर है कि अब अमेरिकी मूल्यों के प्रति झुकाव बढ़ा है, लेकिन साथ ही समाज का बड़ा हिस्सा लोकविद्या की ओर आशा के साथ देखता है। यही मौका है कि लोकविद्या और लोकविद्याधर अपने ज्ञान के बल पर समाज में बराबरी का दावा पेश कर दें। स्वास्थ्य, संगीत, साहित्य, कला, हस्तशिल्प, खाद्य उद्योग, वस्त्र उद्योग, घरेलू वस्तुओं के डिजाइन आदि में अब लोकविद्या की बड़ी माँग है और इसे पूरा करने के लिये लोकविद्याधरों को प्रलोभन देकर फुसलाया जा रहा है। कुछ गिने–चुने लोकविद्याधरों को अपनी तरफ लेकर बड़ी कम्पनियाँ करोड़ों का व्यापार करने लगी हैं। अगर इस व्यक्तिगत लाभ के प्रलोभन से लोकविद्याधर मुक्त होकर समाज के बारे में सोचेंगे तो करोड़ों का मुनाफा उनके अपने समाज के पास रहेगा। लोकविद्याधर समाज की खुशहाली का रास्ता खुलेगा।

प्र0 हाँ, ऐसा तो हो सकता है। लोकविद्या की प्रतिष्ठा के आयोजन भी होते रहते हैं लेकिन इससे लोकविद्या के समाज की बेहतरी का रास्ता नहीं बनाया जाता, बल्कि आयोजक ही सारा मुनाफा उठा ले जाते हैं।

उ0 बात केवल आर्थिक मुनाफे की नहीं है, बल्कि हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा की है। हमारी क्षमता के दुरुपयोग की है। हमारी विद्या और ज्ञान के लूट की है। देखिये, साइंस की दुनिया ने

विश्वविद्यालय और कारखाने खड़े कर हमारी विद्या को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ज्ञान–प्रबन्धन की दुनिया लोकविद्या को अपना बन्धक बना, उसका दोहन कर, बड़ी कम्पनियों के लिये करोड़ों का व्यापार बनाती है। मनोरंजन उद्योग में लोक–संगीत, लोक–नाट्य, लोकभाषा, लोकगीत को शामिल करना, खाद्य उद्योग में लोक व्यंजनों के साथ भोजन के तौर–तरीकों को शामिल करना, वस्त्रों के डिजाइन व सिलाई आदि में इसे साफ देखा जा सकता है। यानी सूचना युग लोकविद्या के शोषण पर खड़ा हो रहा है।

प्र0 क्या इसका मतलब यह हुआ कि सूचना युग केवल लोकविद्याधरों के श्रम का शोषण ही नहीं करेगा, बल्कि ज्ञान का भी शोषण करेगा?

उ0 हाँ, यही बात है। लोकविद्याधरों का उजाड़ जिसे हम रोज़ देख रहे हैं, इसी शोषण का गवाह है। लगता है लोकविद्या को बंधक बनाने के लिये बड़े पैमाने पर उनका उजाड़ किया जा रहा है।

प्र0 इसका मतलब यह हुआ कि लोकविद्याधरों को अपने ज्ञान के शोषण की खिलाफत का रास्ता गढ़ना होगा। इसी में आज के युग का सामाजिक विचार छिपा हुआ लगता है।

उ0 ऐसा ही दिखाई दे रहा है। किसानों की जमीनों का अधिग्रहण, कारीगरों के धंधों का टूटना, छोटी पूँजी की दुकानदारी का उजड़ना, आदिवासियों को खदेड़ना वास्तव में उन्हें उनके ज्ञान के बल पर जीविका चलाने के अधिकार से वंचित करना ही तो है।

प्र0 यह तो देखा जा रहा है कि लोकविद्या के शोषण पर बड़ी कम्पनियाँ अपना कारोबार फैला रही हैं। हम मान भी लें कि इस शोषण के खिलाफ संघर्ष से लोकविद्या स्वयं को मुक्त करने का रास्ता बनायेगी, लेकिन इसी दौर में वह समाज को जाति, धर्म, क्षेत्र की ऊँच–नीच से भी मुक्त कर लेगी, यह कैसे मान लिया जाय?

उ0 लोकविद्या जाति, धर्म, क्षेत्र के दायरे में बँधी नहीं रहती, यह तो हम जानते हैं। लोकविद्याधर किसी एक जाति, व्यवसाय या धर्म से नहीं हैं। इनमें तो विविधता की भरमार है। चूँकि सूचना युग इनके ज्ञान के शोषण पर खड़ा हो रहा है, ऐसे में सभी लोकविद्याधरों के बीच एकता का आधार लोकविद्या में है। समाज में ऊँच–नीच को खत्म करने का आधार इस एकता में है।

प्र0 लोकविद्या में अवश्य संभावनायें हैं, लेकिन सामाजिक विचार गढ़ने का आधार अधिक व्यापक होना होगा।

उ0 हाँ, यह बात सही है। यहाँ तो मैं इतना ही कह रहा हूँ कि लोकविद्या में नये सामाजिक विचार को पैदा करने की ताकत क्यों और कैसे है? यह भी कि लोकविद्या में समाज को संवेदना के रिश्तों के मार्फत देखने और समझने की कोशिश होती है। अभी तक समाज के विभिन्न तबकों के हितों के बीच संघर्षों के मार्फत ही समाज को समझने का तरीका अपनाया जाता रहा है, जिसे यूरोप की शिक्षा से हमने सीखा है। क्या संवेदना के रिश्तों के मार्फत दुनिया की समझ कोई विकल्प देती है? लोकविद्या में प्रकृति को समृद्ध करते हुए मनुष्य की समृद्धि का विचार है। लोकविद्या मनुष्य–मनुष्य के बीच और मनुष्य–प्रकृति के बीच सम्बन्धों को समृद्ध करते जाने का विचार है। क्या ऐसी अगड़ी विद्या में इस ऐतिहासिक मौके पर एक नये सामाजिक विचार को पैदा करने की शक्ति हम देख पा रहे हैं?

प्र0 आपकी बात सही लगती है लेकिन इसकी चर्चा कहीं होती नहीं है ऐसा क्यों?

उ0 इसका कारण यह है कि लोकविद्या की जिस शक्ति की हम बात कर रहे हैं वह अभी सुप्त अवस्था में है। बाहरी आक्रमण के दौरान जब लोकविद्या को तिरस्कार और दमन सहना पड़ा तब वह परिवार, जाति और गाँव, जंगलों में सिमट गई। हमें भ्रम होता है कि लोकविद्या का

स्वभाव इन्हीं बन्धनों में रहने का है। लेकिन ऐसा नहीं है। लोकविद्या जब इन सीमाओं को तोड़कर खुद को सामाजिक (सार्वजनिक) करेगी, तो इसकी विराट शक्ति का परिचय हमें होगा।

प्र0 मुझे ऐसा लग रहा है कि आज लोकविद्याधर समाज की स्थिति कस्तूरी मृग की तरह है। कस्तूरी तो उसी के पास है, लेकिन बावला बनकर वह इधर–उधर उसकी खोज में दौड़ा जा रहा है।

उ0 हाँ, कुछ ऐसा ही हो रहा है।

प्र0 आज की बात बहुत गंभीर है। आपने तो सोच की एक नई दिशा का दर्शन कराया है। लोकविद्या के साथ सहमति के आधार का विस्तार होता जा रहा है। बात करते हुए कब अंधेरा हो गया, पता ही नहीं चला। आइये, कुछ दाना–पानी कर लें।

उ0 मुझे इस गाँव में आकर बहुत अच्छा लगा है। आने वाले गुरुवार को मेरी तरफ से आप सबको गंगाजी के घाट पर न्यौता है। वहाँ मल्लाह समाज और रजक समाज के लोगों के साथ लिट्टी–चोखे का कार्यक्रम है। आप लोग आयें तो बात को आगे बढ़ायेंगे।

प्र0 हम लोग ज़रूर आयेंगे।

☸

6

लोकविद्या की आर्थिक शक्ति

गंगाजी के घाटों पर से धूप हट रही है। चाय, पान, ठण्डे–पेय की दुकानें जल से धुल गई हैं और ग्राहकों का इंतजार कर रही हैं। प्रशासन पिछले कई वर्षों से इन दुकानों को हटा रहा है। शाम को कुछ घाटों पर मेले–सी हलचल है तो कुछ घाट वीरानी में डूब जाते हैं। एक शांत घाट पर 6–7 लोग इकट्ठा बैठे हुये हैं। कुछ ही देर पहले प्रश्नकर्ता के साथ 2–3 युवा शामिल हुये हैं। 2–3 व्यक्ति इनके बाद भी आये हैं। हमारी वार्ता के मुख्य लोग इस समूह में हैं, कुछ निषाद समाज से और कुछ रजक समाज से हैं। यह कोई औपचारिक वार्ता नहीं है, बल्कि पुराने परिचित लोगों ने नई परिस्थितियों पर राय–विचार करने के लिए यह संजोग बनाया है। बड़ी देर तक बातें हुईं। दोनों समाजों के लोगों ने अपने–अपने समाज के अंदरूनी कलह, राजनैतिक दलों के अवसरवादी रवैये, प्रशासन की नई नीतियों के प्रभाव आदि सभी पर बातें रखीं। भोजन में अभी विलम्ब है यह देख उत्तरदाता ने लोकविद्या की शक्ति पर बात खोलना शुरू किया।

उ0 लोकविद्या के आर्थिक मूल्य का सवाल छेड़े बिना क्या निषाद समाज और क्या रजक समाज या किसान समाज, किसी भी समाज के सम्मान और बराबरी की बात को सार्वजनिक पटल पर खड़ा करने में कठिनाई है।

प्र0 आज लोकविद्या की आर्थिक शक्ति की पहचान ही करनी है। क्यों न इससे ही हम शुरू करें?

उ0 क्या यह नहीं लगता कि मनुष्य के पास जो क्षमतायें रही हैं उनसे वह हमेशा ही अपनी खुद की जरूरत से ज्यादा का उत्पादन कर पाता है। प्रकृति में यह व्यवस्था शायद देखी जा सकती है कि हर जड़–चेतन जितना लेता है, उतना या शायद उससे कुछ कण भर ज्यादा ही प्रकृति को लौटाता है। चाहे अपने जीवन में ही, या फिर मर कर। मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति का अर्थ क्या इसी में छिपा हुआ नहीं है? सामाजिकता का आधार उसकी इन क्षमताओं से सर्वथा भिन्न तो नहीं हो सकता। यानि उसके अधिक उत्पादन की क्षमताओं के नियमन की व्यवस्थायें, प्रकार और विचार भी उसके जीवन का ही अंग होते हैं। यह मान लेना कि समाज की आर्थिक व्यवस्थायें तो आर्थिक विशेषज्ञ ही जानते हैं और दुनिया का आर्थिक जगत उन्हीं की बौद्धिक क्षमता पर टिका है, गलत होगा।

प्र0 आजकल टी.वी. और अखबारों में जो आर्थिक जगत की खबरे आती हैं उनको कौन समझ पाता है? चैनल लगते ही ज्यादातर लोग बंद कर देते हैं। लेकिन उस जगत की खबरें हमें प्रभावित तो करती ही होंगी।

उ0 हाँ, प्रभावित तो कर ही रही हैं, लेकिन हमारा यह समझ लेना कि आर्थिक जगत का यही एकमात्र मॉडल हो सकता है गलत होगा। उन खबरों में कभी लोकविद्याधरों के धंधों के उजाड़ की चिन्ता या उसके विकल्प पर चर्चा होती हुई हम कभी नहीं सुनते, देखते या पढ़ते हैं। यह कैसा आर्थिक जगत है जिसमें दुनिया की 80 फीसदी आबादी के आर्थिक हितों पर कोई बात नहीं होती?

प्र0 यह बात हमें भी महसूस हाती है। लगता है किसी दूसरी दुनिया की बातें कर रहे हैं।

उ0 समझने की बात है कि 80 फीसदी लोग जो विभिन्न उत्पादन की क्रियायें कर रहे हैं, उनके कार्य व उत्पादन उन्हीं के लिये अभाव का जीवन ले आयें, यह कैसे संभव हो सकता है।

इसलिए हम कहते हैं कि गरीबी तो कृत्रिम ढंग से थोपी गई है और यह बात हम लोग पहले कर चुके हैं। औद्योगिक युग की उत्पादन व्यवस्थाओं , बाजार और जीने के तरीकों ने बड़े पैमाने पर मनुष्य समाज में गरीबी पैदा की है और प्रकृति को भी गरीब बनाया है। सूचना युग में यह गरीबी फिलहाल तो बढ़ती ही देखी जा रही है।

प्र0 लोकविद्या में क्या अलग ढंग की आर्थिक व्यवस्थाओं का विचार है?

उ0 लोकविद्या में एक अलग ढंग की आर्थिक व्यवस्थाओं का विचार मौजूद है। उसके विकास व उसकी प्रतिष्ठा होने से गरीबी को दूर किया ही जा सकता है।

प्र0 लोकविद्या में ऐसी क्या बात है?

उ0 लोकविद्या में मानवीय विचार व व्यवस्थाओं का आग्रह है। यानि जितना लेना है उससे कण भर अधिक वापस करने का प्रयास करना लोकविद्या के आर्थिक विचार का आधार है। यूँ कहें कि लोकविद्या में मनुश्य–मनुश्य के बीच और प्रकृति के साथ सम्बन्धों को मज़बूत बनाते जाने का आधार है। इसमें एक–दूसरे को समृद्ध करने का, एक–दूसरे की शक्ति बढ़ाने का आधार है।

प्र0 इस बात को समझने की जरूरत है। इसे थोड़ा विस्तार से रखें तो बात समझ में आयेगी।

उ0 किसान अपनी खेती में लगातार जमीन की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने, उसका विकास करने का प्रबन्ध करता है। फसल चक्र को बनाने, जीव–जन्तुओं और पशुओं के पालन के मार्फत तथा और कई तरह की विधियों को अपनाकर वह यह करता है। मनुष्य समाज में विभिन्न उद्योगशील कारीगर समाजों के बीच सम्बन्ध में भी यही विचार प्रभावी रहता है। आदिवासी जंगलों से जितना लेता है उससे अधिक देने का सतत प्रयास करता है। निषाद समाज नदियों से जितना लेता है उससे अधिक उसे देने का प्रयास करता है। स्वास्थ्यकर्मी, संत और कलाकार की सेवायें भी इसी विचार से प्रेरित होती रहीं। इस विचार में व्यक्तिगत व तात्कालिक स्वार्थ या लालच को तिरस्कार का स्थान मिलता है। लोकधर्म में पाप–पुण्य की बहुत सी अवधारणायें इस विचार को उद्‌घाटित करती हैं। इस विचार पर अमल कर ही मनुष्य जाति सदियों से इस धरती पर रह रही है। पूँजीवादी युग ने इस विचार को उलटकर रख दिया है। हमें अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से दूर ले जाने के सारे प्रयास इस व्यवस्था में हो रहे हैं। इसी में हमारी गरीबी का राज है।

प्र0 लोकविद्या में अर्थ व्यवस्था के आधार क्या हैं?

उ0 लोकविद्या में अर्थ व्यवस्था ज्ञान आधारित है, जबकि आज की अर्थ व्यवस्था का आधार पूँजी में है। यह एक बहुत बड़ा फर्क है। औद्योगिक युग में साइंस के ज्ञान से मशीनों का निर्माण हुआ और मशीनों से बड़े पैमाने पर तीव्र गति से उत्पादन करके पूँजी का केन्द्रीयकरण हुआ। पूँजी के इस केन्द्रीयकरण ने ज्ञान और राजसत्ताओं को भी अपना सेवक बना लिया। इससे समाज का संतुलन ही बिगड़ गया। युद्धों–महायुद्धों की घटनायें और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति यही तो कहती है।

प्र0 वह कैसे ?

उ0 पूँजी का केन्द्रीयकरण बिना नाजायज़ मुनाफे के हो नहीं सकता। इस मुनाफे को कमाने के लिए सारे भौतिक, धार्मिक, नैतिक और वैधानिक नियमों से पैदा बाधाओं को हटा दिया गया। तात्कालिक लाभ, व्यक्तिगत लोभ व लालच, संकुचितत स्वार्थ व हितों के पोषण को बढ़ावा मिला। साइंस की दुनिया ने एक नयी अर्थ व्यवस्था का आधार बनाया, जिसने मनुष्य के सामाजिक स्वभाव को नष्ट करने की तैयारी की। औद्योगिक युग का इतिहास यूरोप के मनुष्य के लालच का इतिहास है। दुनिया के अन्य कई समाजों और स्थानों का इतिहास निश्चित

ही यह नहीं रहा है लेकिन उसे कहीं पढ़ाया नहीं जाता। इसका मतलब हमारी शिक्षा में आज भी लोभ, लालच आदि को ही मूल्यों के रूप में बच्चों को पढ़ाया जा रहा है।

प्र0 हाँ, हमें यह पढ़ाया गया है कि बड़े होकर बहुत पैसा कमाओ और इसे महत्वाकांक्षा का नाम दिया गया है।

उ0 आज डाक्टर, इंजीनियर या व्यापारी इसलिए बनने की कोशिश होती है कि उसमें पैसे की कमाई ज्यादा है। हर उद्यम व सेवा मुनाफे को मोटा बनाते जाने के प्रबन्ध में लगे तभी उसे विकासशील उद्यम कहा जाता है। यही वजह है कि शिक्षा और चिकित्सा आज उद्योग की तरह हो गये हैं। वहाँ जाने से लोगों की जेबें खाली हो जाती हैं और भारीर रोगी। वे मानवीय संस्थान नहीं रह गये हैं।

प्र0 लोकविद्या में ज्ञान आधारित अर्थ–व्यवस्था है, इसका क्या मतलब है?

उ0 लोकविद्या में उत्पादन और वितरण दोनों ही ज्ञान आधारित होने का आग्रह है। उत्पादन और सेवा की क्रियाओं में मनुष्य और प्रकृति के साथ सम्बन्धों को मजबूत बनाने का आग्रह है।

प्र0 यह कैसे देख सकते हैं?

उ0 लोकविद्या में त्याज्य की कोई अवधारणा नही है। उत्पादन और सेवा की क्रियाओं के बाद ऐसा कुछ भी नहीं बच रहता जो प्रकृति या मनुष्य द्वारा पुनर्प्रयोग के योग्य न हो। यह महत्वपूर्ण गुण है। साइंस में मशीन के सिद्धान्त में ही यह निहित है कि मशीन द्वारा कार्य करने के बाद बड़ी मात्रा में त्याज्य निकलते हैं जो पुनर्प्रयोग के योग्य नहीं होते। इसे कूड़ा भी कहा जाता है। औद्योगिक युग में बड़ी मात्रा में कूड़ा पैदा हुआ, जिससे प्रकृति गरीब हो गई। इस कूड़े को लालची लोगों और समाजों ने अपनी नजर से दूर कर दिया। लोकविद्या के विचार में तो प्रकृति को कणभर ज्यादा ही वापस करने का हिसाब है। यह उसकी बड़ी शक्ति है।

प्र0 लोकविद्या को अगड़ी विद्या मानने के लिए मैं तैयार हूँ। लेकिन वितरण व्यवस्था के बारे में लोकविद्या का क्या मूल्य है?

उ0 लोकविद्या में उत्पादन और वितरण के बीच बहुत दूरी होना अमान्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि उत्पादन दूर–दूर तक नहीं जाते। इसका अर्थ यह है कि स्थानीय खपत पर जोर रहा है। उत्पादन का 90 फीसदी हिस्सा स्थानीय समाज में और मात्र 10 फीसदी बाहर दूर–दूर तक जाने की व्यवस्थाओं की प्रतिष्ठा रहती है।

प्र0 लेकिन इसमें लोकविद्याधरों की शक्ति का आधार कैसे है?

उ0 स्थानीय समाज में ज्यादातर खपत का आग्रह पूँजी के केन्द्रीयकरण को रोकता है और स्थानीय समाज की खुशहाली के प्रबन्ध को मजबूत बनाता है। स्थानीय खपत लोकविद्या को समृद्ध करती है और लोकविद्या से मनुष्य की खुशहाली में वृद्धि होती जाती है। यह अर्थ व्यवस्था ज्ञान आधारित कहलाती है क्योंकि इस अर्थ व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान के बल पर इसमें भागीदार होता है, न कि पूँजी के बल पर।

प्र0 लेकिन आज वैश्वीकरण का जमाना है। दूर–दूर के बाजार में उत्पादन भेजने में मुनाफे का दर बहुत ज्यादा है। क्या इसका मुकाबला संभव है?

उ0 मैं सोचता हूँ कि यह लोकविद्या के लिए एक ऐतिहासिक मौका है जब वह अमानवीय ज्ञान और व्यवस्थाओं के सामने अपने मानवीय ज्ञान और व्यवस्थाओं को प्रकट करे।

प्र0 वह ऐतिहासिक अवसर क्या है?

उ0 उस ऐतिहासिक अवसर को समझना जरूरी है। औद्योगिक युग में पूँजी का केन्द्रीयकरण कारखानों में मशीनों से उत्पादन के मार्फत हुआ। इस पूँजी का बड़ा हिस्सा लोकविद्याधरों के श्रम–मूल्य की चोरी से बना था। सूचना युग में इस पूँजी ने वित्तीय पूँजी का रूप लिया। यानि पूँजी का अधिकतम केन्द्रीयकरण हो चुका था। पूँजी को और अधिक बढ़ाने के लिए केवल उत्पादन की क्रियायें बढ़ाते जाने में रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। और इसलिए विनिमय (लेन–देन) का क्षेत्र यानि बाजारों के मार्फत इस पूँजी को बढ़ाने का रास्ता बनाया गया। नतीजा यह हुआ कि कारखाने टूटने लगे और दुनिया के बाजारों पर शिकंजा कसने का कार्यक्रम शुरू हुआ। उत्पादन किसी भी तरह से हो लेकिन विनिमय तो बाजार में ही होगा। बाजार से प्रत्येक विनिमय पर पूँजीपतियों ने अपना हिस्सा उठाने की व्यवस्था बनाई। इस व्यवस्था का नाम ही वैश्वीकरण है। सूचना प्रौद्योगिकी वैश्वीकरण की व्यवस्थाओं को बनाने में उसी तरह सहायता कर रही है जिस तरह मशीन की प्रौद्योगिकी ने औद्योगिक युग में उपनिवे ाों की व्यवस्था को मजबूत करने में मदद की थी।

प्र0 बड़ी तेजी से यह घटनायें हो रही हैं। पिछले सिर्फ 20 वर्षों में यह सब हो गया और इन्हें इतने सरल रूप में समझने का हमें आज अवसर मिला। आप लोकविद्या के लिए ऐतिहासिक अवसर की बात कर रहे थे। वह क्या है?

उ0 ये घटनायें सचमुच बड़ी तेजी से हो रही हैं। मैं यह बता रहा था कि उत्पादन किस ज्ञान के बल पर हो रहा है, विज्ञानशाला में, कारखानों में या आदिवासी या कारीगर की मड़ई में, इससे वैश्वीकरण को कोई आपत्ति नहीं है। किसी भी ज्ञान के बल पर और कहीं भी उत्पादन हो लेकिन बनाया गया सामान बाजार में आये इस पर वैश्वीकरण का जोर है। यही वजह है कि आज हर क्रिया व मनोभाव को वस्तु–रूप में बदलकर उसे बेचने योग्य बनाने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है, क्योंकि वैश्वीकरण की व्यवस्थायें बाजार से हिस्सा उठाती हैं, उत्पादन के स्थान से नहीं। बाजार ही पूँजी उठाने के मुख्य स्थान बन गये हैं। यही वजह है कि दुनिया में सभी देशों में बाजारों का पुनर्संगठन जोरों पर है। इसी पुनर्संगठन के चलते बाजारों से छोटी–पूँजी के धन्धे को हटाया जा रहा है और बड़ी कम्पनियों के मॉल बाजारों के लिए जगह बनाई जा रही है। यह तो एक लक्षण ही है। बातें गहराई से समझें तो बहुत कुछ होता नजर आयेगा।

प्र0 यह तो आप सही कह रहे हैं, लेकिन इससे क्या हुआ?

उ0 इससे दो बाते हुई हैं। एक उत्पादन की क्रियाओं के ज्ञान का महत्व घट गया है। जिसके चलते साइंस का महत्व घट गया है। उत्पादन कैसा भी हो लोकविद्या या साइंस के तरीकों से, उसका बाजार में बराबर का महत्व बनता जा रहा है। यह लोकविद्या के लिए ऐतिहासिक महत्व का समय बन रहा है। यही समय है जब उसे अपनी प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की क्रियाओं को आकार देने की अनुकूल स्थितियाँ हैं। दूसरा, लोकविद्याधर समाज के विभिन्न घटक जिन्हें औद्योगिक समाज ने तितर–बितर कर उध्वस्त किया था, वे सब एक ही प्रकार की लूट के शिकार होते देखे जा सकते हैं। बाजार से इन सबके श्रम और ज्ञान की लूट की व्यवस्था इनके बीच एका और सम–वेदना का रिश्ता बनाती जा रही है। यही नहीं, इनके बीच उस चेतना का जिस दिन उदय होगा कि कारीगर किसान, आदिवासी, छोटे दुकानदार आदि मिलकर एक समग्र ज्ञान आधारित समाज का निर्माण कर सकते हैं, उस दिन पूँजी आधारित अमानवीय व्यवस्थायें खत्म होने की शुरूआत हो जायेगी।

प्र0 हाँ, लोकविद्या में इस चेतना के विचार मौजूद दिखाई देते हैं। लेकिन आपने अपनी वार्ता में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रति आगाह किया था, उसका यहाँ क्या सम्बन्ध है?

उ0 सूचना प्रौद्योगिकी के मार्फत वैश्वीकरण की व्यवस्थाओं का प्रबन्ध हो रहा है। इस प्रौद्योगिकी का विकास इसी उद्देश्य से हुआ है। पिछले कई वर्षों से इस प्रौद्योगिकी के मार्फत दुनिया

के हर हिस्से से लोकविद्या का संकलन किया जा रहा है। दुनिया के हर समाज से लोकगीत, लोककला, लोकशिल्प, लोकस्वास्थ्य, लोककथा और लोकजीवन के हर पक्ष का ज्ञान संकलित कर कम्प्यूटरों में सुरक्षित करने का कार्य चल रहा है। इसने स्वयं एक बहुत बड़े उद्योग का रूप ले लिया है। ज्ञान के इस संकलन से इस ज्ञान की खरीद–फरोख़्त की क्रियायें भी अस्तित्व में आ रही हैं, जिसका मुनाफा लोकविद्याधरों को नहीं, बल्कि संकलन पर मालिकी रखने वाली संस्थाओं को मिलता है। इस संकलन को पेटेण्ट कराने की भी क्रियायें चल पड़ी हैं, जिसके चलते इन पर लोकविद्याधरों का नहीं, बल्कि संस्थाओं का अधिकार होगा। यह लोकविद्याधरों के ज्ञान की लूट का नया तंत्र बनता दिखाई दे रहा है। लोकविद्याधरों को बेदखल कर मजबूर स्थिति में डालना और उनके ज्ञान को उन्हें ही इस्तेमाल करने से वंचित कर इस तंत्र को खड़ा करने का रास्ता बनाया जा रहा है। किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे दुकानदार परिवारों की बदहाली का कारण इसी में है।

प्र0 यानि लोकविद्या को उद्योग में बदलकर मुनाफे में उछाल लाना ही इस सूचना युग की मंशा है। यह तो छल है। आप ज्ञान के शोषण की जो बात कह रहे थे, अब समझ में आ रही है।

उ0 यह केवल छल ही नहीं है, बल्कि क्रूरतम कार्य है। लोकविद्या के मूल्यों को नष्ट कर उसे मुनाफे का आधार बनाना, यह प्रकृति और मनुष्य के प्रति जघन्य पाप है। इसलिए इस प्रौद्योगिकी के प्रति सतर्क होने की जरूरत है।

प्र0 आपने जो बातें कही हैं उससे दिमाग की खिड़कियाँ खुलती जा रही हैं। लोकविद्या की सामाजिक और आर्थिक शक्ति का परिचय अचंभित करता है। लोकविद्या की प्रतिष्ठा के लिए ठोस कदम कैसे उठें इसके बारे में मैं जानने को उत्सुक हुँ। साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी के साथ लोकविद्या क्या रूख रखे, इसे भी जानना चाहूँगा।

उ0 आज तो बहुत देर हो गयी है। भोजन का समय हो रहा है। भोजन के बाद सभी अपने–अपने घर जायेंगे। चाहो तो चन्दौली में परसों आ जाओ। वहाँ किसानों ने धरने की बात सोची है।

☸

7

दर्शन

चन्दौली जनपद के कुछ गाँवों के किसानों ने 'रास्ता रोको आन्दोलन' के तहत जनपद की मुख्य सड़क पर डेरा डाला है। यातायात अवरुद्ध है। किसानों की माँग है कि उनकी फसलों को उचित दाम मिले, पानी और बिजली की व्यवस्थायें मिलें। ऐसी ही एक जगह सड़क पर उत्तरदाता और प्रश्नकर्त्ता कई किसानों के साथ बैठे हैं। किसान एक के बाद एक भाषण दे रहे हैं। अभी–अभी एक किसान ने भोजपुरी में एक गीत सुनाया है। सुरीली और बुलन्द आवाज में उसने किसान परिवार की व्यथा को रखा।

उ0 बिना लाउडस्पीकर के देखिये कितनी बुलन्द आवाज में गीत गाया है। गीत के भाव और शब्दों के संयोजन से तो किसान परिवार का चित्र ही खींच दिया गया है। कितनी सशक्त कला है।

प्र0 गाँव और जंगलों में कला के ऐसे रूप बिखरे पड़े हैं। लेकिन आपने जिस तरह पिछली मुलाकात में बताया, मुझे डर है कि ये सारी बहुमूल्य कलायें हमारे समाज से छिन जायेंगी और उन्हें बाजार में बेचा जायेगा।

उ0 हाँ, चित्र तो ऐसा ही कुछ भयानक दिखाई दे रहा है। जानते हैं, लोकविद्या कुछ काल के लिये हार सकती है, दब सकती है, लेकिन मरती नहीं है। और अगर लोकविद्याधर ठान लें तो शैतानी शक्तियों से डटकर मुकाबला करती है, उनका दमन करती है। आज हम क्यों न लोकविद्या की सांस्कृतिक शक्ति के बारे में बात करें? लोकविद्या द ान की बात करें?

प्र0 यह तो अच्छी बात होगी। मैं जानने के लिये उत्सुक हूँ।

उ0 लोकविद्या के लुप्त होने का भय बेवजह का है। लोकविद्या मरती नहीं है। नये–नये रूपों में प्रकट होती है। लुप्त होने का भय दिखाकर ही लोकविद्या को कम्प्यूटर में संकलित करने पर सहमति हासिल की गई है।

प्र0 हम लोकविद्या की शक्ति का सांस्कृतिक पक्ष कैसे समझें?

उ0 यह मुझे ही नहीं, सभी को सोचना है और समझना है। इसकी कुछ शुरुआत हम आज कर सकते हैं। बात यह है कि लोकविद्या में सत्य के सतत् निर्माण और पुनर्निर्माण को प्रतिष्ठा है। साइंस में सत्य की खोज को प्रतिष्ठा रही है, सत्य के निर्माण को नहीं। इस बात से सारी दृष्टि ही बदल जाती है।

प्र0 इसे थोड़ा और स्पष्ट करें।

उ0 लोकविद्या में सत्य लोगों के बीच, उनके जीवन में बसता है। सत्य कोई अमूर्त्त वस्तु नहीं है। इसलिये लोकविद्या में चमत्कारों के लिये या विशिष्ट सिद्धियों के लिये विशेष सम्मान का स्थान नहीं है। और न सत्य कुछ ऐसी वस्तु है जिसकी खोज के लिये भटकना पड़े। लोकविद्या का सत्य सामान्य जीवन में बसता है। जीवन की ज़रूरत, अनुभव और संवेदनाओं के मार्फत सत्य का निर्माण होता है और वह लोकविद्या में दर्शन देता है। लोकसम्मत और लोकस्थ होने की क्रियायें सत्य के पुनर्निर्माण का हिस्सा हैं।

प्र0 यह हम कैसे मान लें?

उ0 हमारी परम्परा लोकविद्या की परम्परा है। हमारे यहाँ जितने भी संत हो गये हैं वे यही कह गये हैं कि सामान्य जीवन में ही सत्य है, वहीं खुदा है। बुद्ध, कबीर, रैदास, मीरा से लेकर

गांधी तक इस लम्बी संत परम्परा ने समय–समय पर सत्य का पुनर्निर्माण किया है। इन सभी संतों के नेतृत्व में लोगों ने लोकविद्या का नवीनीकरण ही नहीं किया बल्कि समाज पर हावी अन्यायी शक्तियों से मोर्चा भी लिया। क्या लोकविद्या में निहित इस शक्ति के बारे में किसी को समझाने की जरूरत है?

प्र0 यह आप बिल्कुल सही कह रहे हैं। हमने अपनी परम्परा को इस रूप में पहचानने की कोशिश ही नहीं की। हमें खुद को हमारी कमजोरियों, अंधविश्वास, धार्मिक पाखण्ड के पारम्परिक शिकार के रूप में ही पहचानने की शिक्षा मिली है। हमारी शक्तियों की पहचान करना हमें नहीं सिखाया जाता। लेकिन आपने जो बात कही कि साइंस और लोकविद्या में सत्य की अवधारणा भिन्न होने से दृष्टि ही बदल जाती है, वह कैसे?

उ0 लोकविद्या में सत्य कोई बाहरी नहीं है। यानी लोगों के पास ही है, लोगों के जीवन में है। इसके दर्शन के लिये अथवा इसे पाने के लिये उन्हें किसी अन्य पर निर्भर होने की ज़रूरत नहीं है। दूसरे शब्दों में, लोकविद्या का सत्य कोई भी सामान्य व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, उसका पुनर्निर्माण करते हुये स्वयं उत्सर्ग की स्थिति प्राप्त कर सकता है। साइंस में ऐसा नहीं है। साइंस के सभी सिद्धान्त व प्रयोग प्राकृतिक व सामाजिक स्थितियों से दूर किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में ही लागू हो सकते हैं। ये वि ोश ढ़ंग से शिक्षित विशेषज्ञों द्वारा होते हैं। इसमें सत्य की अवधारणा सामान्य व्यक्ति की पहुँच के बाहर है। दूसरे शब्दों में, साइंस में सामान्य व्यक्ति की मुक्ति का मार्ग उसमें न होकर बाहर किन्हीं अन्य में है, इसलिए वह स्वयं अपनी स्थितियों में बदलाव नहीं ला सकता। इस मूल्य का निर्माण साइंस द्वारा मजबूत होता रहा। नतीजा यह हुआ कि आर्थिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य, प्रशासन, शिक्षा आदि जैसे क्षेत्रों में यह मूल्य हावी होता आज भी देखा जा सकता है।

प्र0 हमारी मुक्ति हमसे नहीं बल्कि किन्हीं अन्य शक्तियों के हाथ है, यह तो हमारे खिलाफ एक बड़ा षड़यन्त्र–सा मालूम पड़ता है।

उ0 इसे इस रूप में समझें कि दो अलग–अलग ज्ञान परम्पराओं में सत्य की अवधारणा में भिन्नता है। इसके सामाजिक और सांस्कृतिक नतीजों पर गौर करने की ज़रूरत है।

प्र0 साइंस के इस मूल्य का एक परिणाम यह तो हुआ ही है कि समाज में परजीवी विशेषज्ञों की एक जाति पैदा हो गई है।

उ0 हाँ, और यह भी हुआ है कि सामान्य जन को मूढ़ कहा और माना जाने लगा है। सामान्य व्यक्ति अज्ञानी है, यह मूल्य समाज में दृढ़ हो गया। जब से स्कूल–कालेज में साइंस आधारित शिक्षा हो गई, तभी से सामान्य जन के अज्ञानी होने का प्रचार शुरु हो गया। इसने एक बहुत बड़ी ग़ैर–बराबरी को जन्म दिया। समाज के लिये खाने–ओढ़ने–रहने का इंतजाम करने वाले तमाम लोग एक झटके में अज्ञानी करार दिये गये। राजसत्ताओं ने ऐसा होने में सतत् समर्थन किया।

प्र0 यानी लोकविद्याधरों का दमन केवल आर्थिक या सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में व ज्ञानगत अवधारणाओं में भी निहित रहा है।

उ0 लोकविद्याधरों के सामने कितनी बड़ी चुनौती है, इसकी समझ शायद अब इस बात से आपको स्पष्ट हो रही होगी। एक और बात है, वह यह कि लोकविद्या में ज्ञान को नैतिक मूल्यों से पूर्ण होने की अनिवार्यता रही है। साइंस के विकास का पूरा दौर ही यह रहा है कि ज्ञान मनुष्य की उपस्थिति से स्वतंत्र हो, नैतिक मूल्यों से स्वतंत्र हो। यही वजह है कि साइंस आधारित समाज के संगठन, विचार और मूल्य मनुष्य की मानवीय संवेदनाओं को, उसकी सृजन शक्ति को मौका देने में कुछ हिचकते हैं। उन्हें मनुष्य को बाहर से नियंत्रित करने

वाली व्यवस्थायें अधिक पसन्द हैं। लोकविद्या में स्वशासन, संयम, स्वदेशी, सत्याग्रह जैसे मूल्य ही प्रभावी रहे हैं जो मनुष्य को खुद पर नियंत्रण करने और खुद ही खुद का नियंता होने की स्वायत्तता देते हैं।

प्र0 ये तो सचमुच बड़े भेद हैं। मुझे अब समझ में आ रहा है कि जो असंख्य पद हमारे देश के विभिन्न संतों ने विभिन्न भाषाओं में लिखे हैं, उनमें एक स्वर सतत् क्यों मिलता है। वे सब कहते हैं कि सत्य (खुदा या ईश्वर) तो मन के अंदर है, बाहर कहाँ ढूँढ़ना है? वह तो सबके अन्दर है। और 'अपने अन्दर' का अर्थ वे सामान्य जीवन से ले रहे हैं, न कि व्यक्तिगत। ये सभी संत अपनी जीविका को लोकविद्या के बल पर चलाते रहे हैं। उसी में उनका राम बसा है। इसका अर्थ तो प्रत्येक मनुष्य की ज्ञान पर सत्ता है, यही वे कह रहे हैं। क्या मैं गलत हूँ?

उ0 बिल्कुल सही है। और यह समझना भी ज़रूरी है कि सृजन और जानकारी में बहुत बड़ा फर्क है। सृजन की शक्ति सत्य के निर्माण की शक्ति है। जानकारी तो विद्या को संगठित करने के लिये आवश्यक योग्यता मात्र है। सृजन करनेवाला दार्शनिक है और जानकारियों का संकलनकर्त्ता मात्र एक कर्मचारी है, या कुछ अधिक हुआ तो समीक्षक हो सकता है। इस तरह लोकविद्याधर सृजनकर्त्ता हैं। वे सब दार्शनिक हैं। स्कूल–कॉलेज–विश्वविद्यालय की शिक्षा हमें केवल जानकार बनाती है। सोचना यह है कि हमें आज दार्शनिकों की ज़रूरत है या कर्मचारियों की?

प्र0 यह तो आपने बहुत बड़े भेद को खोलकर रख दिया है। किसी भी समाज को सभ्यता की ऊँचाइयाँ छूने के लिये निस्संदेह दार्शनिकों की ज्यादा ज़रूरत है। लेकिन यह मानेगा कौन?

उ0 कला के क्षेत्र में इसे बहुत साफ देखा जा सकता है। कलाकार स्वयं एक दार्शनिक होता है। वह अपनी कला के माध्यम से सत्य का निर्माण करता है। आज भी कलाकार स्कूल–कालेज की विद्या के बाहर ही ज्यादा मिलते हैं। साहित्य, संगीत, नाट्य, चित्रकला, मूर्तिकला आदि में आप खुद इसे देख सकते हैं। लोकविद्या में कलाक्रिया में नकल को स्थान नहीं है। प्रकृति अथवा समाज के यथार्थ चित्रण को उच्च मूल्य नहीं है। लोकविद्या भाव, संवेदना, नैतिक मूल्यों को सर्वोच्च स्थान देती है। इसमें मौलिकता है। इसलिये इसमें रूपक और स्वतंत्र अनुभूतियों की बहुलता है। इसे उच्चकोटि की ज्ञान–क्रिया माना गया है।

प्र0 लोकविद्या में कला की दृष्टि को कैसे समझेंगे?

उ0 जहाँ तक मुझे दिखाई देता है, लोकविद्या में कला–क्रिया का उद्देश्य सत्य के निर्माण का है और इसमें रत होने वाला सतत् एक उत्सर्ग की स्थिति को प्राप्त करने का मार्ग गढ़ता है। सतत् अमानवीय वृत्तियों पर विजय प्राप्त करके , उन्हें नियंत्रित करने वाली शक्तियों का निर्माण और विकास करता जाता है। कला में सौन्दर्य की अनुभूति मात्र इन्द्रिय सुखों तक सीमित नहीं मानी गई है, बल्कि मनुष्य को उसकी असलियत का एहसास कराने में रही है।

प्र0 क्या मतलब हुआ?

उ0 कलाकार अपनी कृति को रचते समय एक विलक्षण अनुभूति से गुजरता है। यह अनुभव किया जाता है कि इस दौरान मनुष्य शुद्धता प्राप्त करता जाता है। यानी क्षणिक और क्षुद्र लोभ, लालच, वैर, ईर्ष्या, द्वेष की भावनाओं से छुटकारा पाने का मार्ग गढ़ता है। और सचमुच इनसे छुटकारा पाता है, चाहे वह समय केवल कला–क्रिया में रत रहने तक ही सीमित क्यों न हो।

प्र0 यानी अपने अहंकार पर नियंत्रण करने का मार्ग बनाता है। क्या सभी प्रकार की कलाओं में यह होता माना गया है?

उ0 लोकविद्या में कला की अवधारणा यही रही है। कला में रूप का महत्त्व माना गया है, लेकिन उससे अधिक क्रिया में रत होने की और इस दौरान उस विलक्षण अनुभूति को प्राप्त करने

पर अधिक बल है। इसलिये सामान्य जीवन की हर क्रिया में कला का पक्ष प्रबल देखा गया है। कला के क्षेत्र में हर सामान्य व्यक्ति दखल रखता है, यह लोकविद्या का मूल्य है। फिर यह विलक्षण अनुभूति केवल कलाकार प्राप्त करें यही नहीं है, बल्कि कलाकृति का रस ग्रहण करने वाला दर्शक, श्रोता भी ऐसी अनुभूति पा सके तभी कलाकार की कला उच्च श्रेणी की मानी जाती है। कला–क्रिया में निहित यह मूल्य कला की सामाजिकता को मजबूत आधार देता है।

प्र0 वह कैसे?

उ0 कला व्यक्तिगत नहीं रह जाती। वह मात्र व्यक्तिगत अनुभव और अनुभूतियों का पिटारा खोल देने का कार्य नहीं है और न मात्र सम्प्रेषण का माध्यम है। लोककला में आज भी उनके सृजनकर्त्ता का नाम प्रचारित करने पर जोर नहीं दिया जाता। क्योंकि कला व्यक्तिगत गुण मानी ही नहीं गई है। अहं को बढ़ने देने के मार्ग गढ़ने की प्रथा लोकविद्या में नहीं रही है। कला क्षेत्र में ही नहीं, लोकविद्या में चिकित्सा, कृषि, उद्योग आदि किसी भी क्षेत्र में यही देखा जा सकता है। लोकविद्या में ज्ञान हमेशा ही सामाजिक रहा है। ज्ञान पर सबका अधिकार रहा है।

प्र0 क्या पूँजीवाद ने ज्ञान को निजी बनाया है?

उ0 शायद यह सही हो। पूँजीवाद ने जिस तरह सम्पत्ति को निजी बनाया उसी तरह ज्ञान पर निजी मालकियत की अवधारणा भी पूँजीवादी व्यवस्थाओं की ही देन रही मानी जायेगी। साइंस के शोधों का पेटेण्ट करने की व्यवस्था में इसे साफ देखा जा सकता है। लोकविद्या में ज्ञान की खरीद–फरोख़्त को अनैतिक माना जाता रहा है। ज्ञान के सामाजिक होने की मान्यता होने से किसी को भी ऐसा करने का नैतिक अधिकार ही नहीं रह जाता। जिससे ज्ञान किसी व्यक्तिगत उद्योग का रूप नहीं ले पाता और समाज की उन्नति का आधार बनता है। आज जिस तरह स्कूल, अस्पताल और मनोरंजन के क्षेत्र उद्योग बन गये हैं, उसकी तो लोकविद्या में कोई कल्पना ही नहीं है। उल्टे ऐसा करने को पाप का नाम दिया गया है।

प्र0 हाँ, आज शिक्षा, चिकित्सा और मनोरंजन बड़े उद्योग के रूप में स्थापित हैं। क्या इनसे समाज में अनैतिक संस्कृति का फैलाव हो रहा है, यह कहा जा सकता है?

उ0 हाँ, यह कहना गलत नहीं है। क्या लोकविद्याधर इन स्थानों पर ठगे नहीं जा रहे हैं? यहाँ जायज़–नाजायज़ ज्ञान के बीच फर्क ही नहीं रह गया है। मीडिया में तो यह अब बिल्कुल साफ देखा जा सकता है। सूचना युग में यह फर्क तेजी से घटता ही जाना है।

प्र0 वह क्यों?

उ0 सूचना युग में ज्ञान के हर प्रकार को सूचना या जानकारी में बदल दिया जाता है। समाज में जो ज्ञान है उसे ज्ञान के रूप में ग्रहण न कर, जानकारी के रूप में ग्रहण किया जाता है। लोकविद्या का बड़े पैमाने पर जो संकलन कम्प्यूटर में हो रहा है, वह मात्र जानकारी के रूप में किया जा रहा है।

प्र0 इससे क्या फर्क पड़ता है?

उ0 फर्क यह पड़ता है कि ज्ञान केवल जानकारी तो होता नहीं है। ज्ञान में मूल्य भी निहित होते हैं। मूल्यों से रहित जानकारी तो शैतानी हो जायेगी। लोकविद्या का मूल्य मनुष्य का मनुष्य से और प्रकृति के साथ सम्बन्ध को मज़बूत बनाते जाने का है और यह मूल्य समाज के बीच हो रही क्रियाओं के मार्फत जीवन का अंग बनता है। यह मूल्य मनुष्य की जानकारियों से अलग नहीं किया जा सकता, इसकी बात हम पहले कर चुके हैं। लेकिन इसे नजरन्दाज़ कर सूचना युग इन्हें मात्र जानकारी के रूप में इकट्ठा करता है।

प्र0 इससे उन्हें क्या फायदा है?

उ0 सूचना युग में सूचना ने पूँजी का रूप ले लिया है। इसलिये ज्ञान की सभी धाराओं से सूचनाओं का संकलन करना, उन्हें संगठित करना, यह एक बड़ा उद्योग बन चुका है। साइंस के तर्क व मूल्य के दायरे के बाहर ज्ञान के अन्य प्रकारों से भी सूचना का निर्माण हो सकता है, इस सच्चाई का एहसास होते ही लोकविद्या का असीमित ज्ञान भण्डार एक कभी खत्म न होने वाले खजाने के रूप में दिखाई देने लगा है। लोकविद्या की संगीत, कला, कृषि, उद्योग, भवन निर्माण, वस्त्र उद्योग, खाद्य आदि सभी से सम्बन्धित सूचनाओं को लूटने की होड़ मची है।

प्र0 आप इसे लूट क्यों कह रहे हैं?

उ0 तो और क्या कहें? कोई ज्ञान के भण्डार में घुसकर मनमानी करे, तोड़–फोड़ करे, जबर्दस्ती या बहला–फुसलाकर समाज के बीच से ज्ञान उठा ले जाये तो उसे क्या कहा जायेगा?

प्र0 इसे वे इसीलिये न इकट्ठा कर रहे हैं कि ये विद्यायें लुप्त न हो जायें?

उ0 यह हमें बहकाने वाली बात है। समाज में रहकर ये लुप्त हो जायेंगी, यह मानने का तो कोई कारण ही नहीं है। जो लोग उस विद्या को ज़िन्दा रखे हुए हैं, उन्हीं के हाथों में रहने से वह मर कैसे जायेंगी? असली बात यह है कि लोकविद्या की जानकारियों को संगठित कर उन्हें बेचने योग्य बनाकर उनसे मुनाफा कमाने का बहुत बड़ा अवसर पैदा हो चुका है। इसलिये लोकविद्या की जानकारियों को एकत्र कर उनमें मामूली–सा बदलाव कर उनका पेटेण्ट बनाकर उस पर निजी मालिकियत हासिल करने का सिलसिला शुरु हो चुका है। यह लूट नहीं तो क्या है?

प्र0 यह तो लूट ही है। मुझे मालूम ही नहीं था कि सूचना प्रौद्योगिकी और ज्ञान के प्रबन्धन के बल पर खड़े ज्ञान उद्योग की सच्चाई ये है?

उ0 हाँ, ज्ञान को लूटकर कैद करने की चाल है। लोकविद्या के शोषण की बात इससे साफ खुलकर सामने आती है। ज्ञान को विकृत करने का ही नतीजा है कि कला, मीडिया, शिक्षा और पूरे सांस्कृतिक क्षेत्र में सतही मनोरंजन और अश्लीलता को बढ़ावा मिल रहा है। भौंड़ी धार्मिकता, शोर और बाजारूपन से भरे सांस्कृतिक व धार्मिक आयोजन इस सूचना युग की देन हैं। इसमें न कला है और न सत्य।

प्र0 तो क्या लोकविद्या सूचना प्रौद्योगिकी का त्याग कर दे या उसे मिटाने का ऐलान कर दे?

उ0 लोकविद्या में इस तरह का कोई विचार नहीं है। लोकविद्या में अहिंसा और भाईचारे का मूल्य बुनियादी मूल्य है। हम बात कर चुके हैं कि लोकविद्या सम्बन्धों को नैतिक बनाने और उन्हें मज़बूत करने का ज्ञान है। सम्बन्धों को इस तरह विकसित करने में वह किसी से बैर कैसे रख सकती है? किसी के साथ हिंसा कैसे कर सकती है? साइंस ने लोकविद्या के साथ इतना दुर्व्यवहार किया, लेकिन वह भाईचारा बनाने की तैयारी दिखाती है। सूचना प्रौद्योगिकी के साथ भी वह इस तरह का सम्बन्ध विकसित कर सकती है। लेकिन अन्याय सहन करना लोकविद्या के स्वभाव में नहीं है।

प्र0 तो अन्याय से मुक्ति का क्या रास्ता है?

उ0 वह तो अभी गढ़ा जाना है। हम लोकविद्या की उन शक्तियों का परिचय प्राप्त कर रहे हैं जो आज एक मुक्तिदायी विचार को जन्म देने की संभावना दिखाते हैं। क्या समाज को इन

शक्तियों का एहसास कराने में उस चेतना का विकास होता नहीं दिखाई देता जो एक अधिक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिये ज़रूरी है?

प्र0 हाँ, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। आपने हमें हमारी भाक्तियों को लोकविद्या के मार्फत देखना और पहचानना सिखाया, इसके हम भाुक्रगुजार हैं। लोकविद्या में अगडी विद्या के गुण निस्संदेह हैं। लेकिन हमारे समाज में बुराइयाँ भी है। लोकविद्या समाज में भी कई बुराइयाँ हैं। उनको खत्म करना भी तो जरूरी है। क्या आप ऐसा नही सोचते ?

उ0 बे ाक, हमारे समाज में कई बुराइयाँ हैं और उन्हें दूर भी करना है। लेकिन बुराइयों की चर्चा करने से उन्हें दूर करने की भाक्ति नही हासिल की जा सकती। लोकविद्या में बुराई पर विजय की अवधारणा अच्छाई का निर्माण करके है। यहीं सत्य का निर्माण है। दूसरी बात यह है कि बुराई का आधार मनुश्यत्व की सीमा लांघ न पाये इसका विचार लोकविद्या में सतत् एक जीवंत कसौटी के रूप में हर क्रिया व कार्य में मौजूद होता है। इसमें बुराई को सामाजिक मान्यता नही है, जैसी पूँजीवादी युग में है।

प्र0 यह तो सच है कि बहुत सी बुराइयों की जड़ औद्योगिक युग की देन है। इसमें समाज का संतुलन ही खो गया है।

उ0 बातें करते हुए काफी देर हो गई है। धरना भी खत्म हो रहा है। सामान्य जीवन में अधिक विचरते हुए इन सभी बातों पर तुम विचार करना और ऐसे ही वार्त्ता में शामिल होते रहना।

प्र0 लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभी बचा हुआ है। वह यह कि लोकविद्या की शक्ति का संयोजन कैसे होगा और वह खुद को किस रूप में प्रकट करेगी?

उ0 हाँ, आज की परिस्थितियों में लोकविद्या की राजनीतिक शक्ति की पहचान किये बिना यह नहीं हो पायेगा। अगली मुलाकात में इसी पर बात होगी।

☸

8

ज्ञान की राजनीति

एक महीने बाद... शहर का सबसे व्यस्त बाजार। बाजार के एक कोने पर दो व्यक्ति आपस में अभिवादन कर मिल रहे हैं। ये कोई और नहीं हमारी वार्ता के प्रमुख व्यक्ति हैं।

प्र0 आप बहुत दिनों बाद दिखाई दे रहे हैं। इस बीच मैंने सम्पर्क करने की कोशिश की लेकिन आप शहर में नहीं हैं यह मालूम हुआ।

उ0 हाँ, मैं बाहर था। एक पुराने मित्र के साथ विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) जहाँ–जहाँ बन रहे हैं उन स्थानों पर जाने का अवसर मिल गया।

प्र0 मैंने सुना है कि विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) बनाने के लिए किसानों से जमीन अधिग्रहित की जा रही है। किसान विरोध भी कर रहे हैं।

उ0 मालूम नहीं यह सब कहाँ ले जायेगा। लेकिन तुम्हारे साथ जिस वार्ता का वादा किया था वह मुझे याद है।

प्र0 आप अगर समय दे तो चाय पीते हुये क्यों न बाते थोड़ी आगे बढ़ाये। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीति में घटनाक्रम की तेजी ने लोकविद्या के बारे में अधिक जानने की मेरी दिलचस्पी को बढ़ा दिया है।

उ0 चलिये।

प्र0 पिछले महीने मैं बहुत मित्रों से मिला और उनके बीच लोकविद्या की बात की। लोकविद्या में निहित ताकत से किसी को भी इनकार करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन इसे एक प्रभावी और बदलावकारी विचार व शक्ति के रूप में संयोजित करने का रास्ता कैसे बने? इस सवाल का जवाब नहीं मिलता।

उ0 हाँ, यही तो चुनौती है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आज पूँजीवादी विचार और व्यवस्थायें दुनिया के अधिकांश देशों को अपनी गिरफ्त में ले चुकी हैं। कम्युनिस्ट सरकारें जिन देशों में हैं वहाँ पूँजीवादी व्यवस्थायें हैं या नहीं, इस बारे में आप खुद खोज कर सकते हैं। लेकिन यह बात सूरज की रोशनी की तरह साफ है कि दुनिया के सभी गरीब समाज लोकविद्या के सहारे ही अपनी जिन्दगी गुजार रहे हैं। लोकविद्या सार्वभौम है।

प्र0 इसका क्या मतलब है?

उ0 लोकविद्या दुनिया के हर कोने और हर स्थान पर मौजूद है। जहाँ–जहाँ मनुष्य हैं वहाँ लोकविद्या अवश्य है। लोकविद्या स्थान और काल के अनुसार विभिन्न रूपों को ग्रहण करती है, लेकिन विभिन्न स्थानों की लोकविद्या में तर्क व मूल्यों का प्रकार एक–समान या मिलता–जुलता देखा जा सकता है। यह लोकविद्या की शक्ति है। यह एक ऐसे वैश्विक विचार के उदय की शक्ति संजोये हुये है जो हर स्थान के मनुष्य की स्वायत्त सत्ता का सम्मान करता हो। लोकविद्या उसके लिए भौतिक व्यवस्थायें गढ़ने की दिशा देती है, दे रही है।

प्र0 आज की तारीख में लोकहितकारी परिवर्तन की वैश्विक शक्ति रखने वाला कोई विचार दिखाई नहीं दे रहा है। एक समय समाजवादी विचार ने यह शक्ति हासिल की थी। लेकिन आज तो नहीं है। आप लोकविद्या के वैश्विक होने की जो बात कर रहे हैं, वह तो बेहद स्फूर्ति देने वाली है। लोकविद्याधर समाजों के बीच एकता की शक्ति का उद्घाटन करती है।

उ0 इस एका को देख पाने की ज़रूरत है। दुनिया में हर स्थान पर लोकविद्याधरों के ज्ञान के साथ हो रहे दुर्व्यवहार और लूट को समझने की जरूरत है। इन सभी स्थानों की लोकविद्या में निहित शक्तियों को वहाँ के लोकविद्याधर जानें, पहचानें और संजोकर उसके बल पर मुक्ति के विचार को आकार दें, यह आज की जरूरत है। प्रकृति और मनुष्य समाज को गरीबी के महारोग से छुटकारा देने की दवा इन्हीं के पास हैं।

प्र0 इसका रास्ता कैसे बने?

उ0 अगर एक ऐसा समाज बनाना है जो आर्थिक शोषण, सामाजिक गैर–बराबरी, राजनैतिक गुलामी या पिछलग्गूपन, सांस्कृतिक तानाशाही, और दार्शनिक ऊँच–नीच से मुक्त हो, तो एक नई सामाजिक पहल लेनी होगी। इस पहल को हम ज्ञान की राजनीति कह सकते हैं।

प्र0 इसका क्या अर्थ है जरा खोलकर बतायें।

उ0 सूचना युग अपनी हर गतिविधि को यह कहकर जायज़ ठहरा रहा है कि वह एक ज्ञान आधारित समाज बना रहा है। ज्ञान–उद्योग, ज्ञान–उत्पाद, ज्ञान–सहयोग, ज्ञान–राजनीति आदि ज्ञान से सम्बन्धित मुहावरे प्रचलित हो गये है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल उद्योग फल–फूल रहे हैं और सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित अन्य उद्योग जैसे मीडिया, मनोरंजन, शिक्षा आदि भी फल–फूल रहे हैं। इनके फलने–फूलने को ही ज्ञान आधारित समाज के निर्माण की बात कही जा रही है। लेकिन इसकी कीमत कौन और कैसे चुका रहा है, इसकी बात नही की जाती। कहने को तो यह ज्ञान आधारित युग है, किन्तु वास्तव में यह ज्ञान पर कब्जे और उसके शोषण पर ओधारित युग है। आम आदमी को ज्ञान प्राप्ति से और उसे उसके अपने ज्ञान को इस्तेमाल करने से वंचित करने की व्यवस्थायें बनाई जा रही हैं।

प्र0 वह कैसे?

उ0 कुछ मोटे उदाहरणों से साफ दिखाई दे सकता है। शिक्षा बहुत महंगी हो गई है, यानि सामान्य लोगों से ज्ञान का अधिकार छीना जा रहा है। फिर ज्ञान की गतिविधियाँ ज्यादातर कम्प्यूटर–इंटरनेट पर हो रही हैं और कम्प्यूटर का ज्ञान आम जनता की पहुँच के फिलहाल तो बाहर है। लोकविद्या (किसानी, कारीगरी, वान्यिकी,, पालन–पोषण, छोटी दुकानदारी) को कम आर्थिक मूल्य दिया जा रहा है। लोकविद्या के शोषण की बात तो हम कर ही चुके हैं। लोकविद्याधरों को बेदखल करना यानि उन्हें उनके ज्ञान के इस्तेमाल से वंचित करना ही तो है। पेटेन्ट बनाकर, कम्प्यूटर में संग्रहित कर, लोकविद्या पर पूँजीपतियों का कब्जा बन रहा है। इसके अलावा शिक्षा, बाजार, प्रशासन और सेवा (बैंक, डाक, पुस्तकालय, खबरें, शोध, सूचना आदि) कम्प्यूटर– इंटरनेट पर स्थानान्तरित हो रहे हैं। यानि सार्वजनिक सेवायें गरीब समाज से दूर हो रही हैं। आप इसमें और भी कई बातें जोड़ सकते हैं। शिक्षा, बाजार, पेटेन्ट, साफ्टवेयर और प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल में कदम–कदम पर ज्ञान को बांधने और उस पर नियंत्रण की क्रियायें साफ देखी जा सकती है।

प्र0 इन सभी क्षेत्रों में लोगों का विरोध भी देखा जा सकता है।

उ0 हाँ, हर जगह विरोध हो रहे हैं। हमारे देश में ही नहीं दुनिया में सब जगह किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटी दुकानदारी करने वालों, छात्र व बुद्धिजीवियों द्वारा किये जा रहे आन्दोलनों और रचनात्मक कार्यों की कमी नहीं है। लेकिन ये अलग–थलग हैं और अपनी विद्या में निहित शक्ति और ज्ञान के शोषण की चेतना इनमें नहीं है। परिणामतः ये मात्र प्रतिरक्षात्मक आन्दोलन बनते जा रहे हैं।

प्र0 चित्र तो यही बनता जा रहा है।

उ0 ऐसे में ज्ञान की राजनीति इस चेतना के विकास की वाहक बनती है।

प्र0 हाँ, यह संभावना है, लेकिन ज्ञान की राजनीति कैसे होगी? क्या कोई दल बनाया जायेगा?

उ0 आज की दलीय राजनीति का गन्दा रूप भुगतने के बाद दल बनाने का विचार तो नहीं हो सकता और फिर लोकविद्या में संकुचित हित और विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर दलीय राजनीति से जिस प्रकार की सत्ता आकार लेती है वह गरीबों की पक्षधर रहे, पूंजी के आगे न दबे ऐसा तो नहीं हो पाता। इसका मतलब है कि ज्ञान की राजनीति को सत्ता के नये प्रकारों को गढ़ना होगा।

प्र0 यह तो बड़ी चुनौती है।

उ0 हाँ, महारोग को जड़ से खत्म करने का काम कोई मामूली तो नही ही हो सकता। बात यह है कि दलीय राजनीति केन्द्रीय सत्ता के होने और सत्ता के द्वारा बल प्रयोग को जायज ठहराती है औरे यह पूँजी के केन्द्रीयकरण के साथ हाथ मिलाकर चलती है। इसलिए गरीबों का प्रतिनिधित्व करने वाले दल भी पूंजीवादी व्यवस्थाओं के पक्षधर होने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसे में यह रास्ता हमें कहाँ ले जायेगा?

प्र0 तो फिर रास्ता कहाँ है?

उ0 वह तो लोकविद्याधर समाज के पास है। वे ही बतला सकते हैं।

प्र0 तो ज्ञान की राजनीति क्या करेगी?

उ0 ज्ञान की राजनीति समाज में ज्ञान के शोषण के खिलाफ, ज्ञान को बांधने के खिलाफ एक माहौल खड़ा करेगी। यह माहौल समाज के हर स्थान और हर तबके में फैलाने का प्रयास करेगी। ज्ञान के उद्योग होने का विरोध हो, ज्ञान समाज की खुशहाली का आधार बने, मुनाफे का स्रोत न बने आदि बातों के मार्फत ज्ञान को सार्वजनिक पटल पर बहस का मुद्दा बनाने की वाहक बनेगी। लोकविद्याधरों के बीच उनका उनके अपने ज्ञान पर भरोसा बढ़ाने के लिए नई क्रियाओं को आकार देगी। लोकविद्या की आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक शक्तियों का उद्घाटन कर उन्हें समाज संगठन के नये विकल्पों को गढ़ने की ऊर्जा से अनुप्राणित करेगी। शिक्षा, बाजार, साफ्टवेयर, मीडिया, कला आदि क्षेत्रों से जुड़े संगठनों और व्यक्तियों को ज्ञान–क्षेत्र में हो रही हलचल से परिचित करायेगी। विभिन्न ज्ञान–धाराओं के बीच के सम्बन्धों में भाईचारा बनाने के आधार बनायेगी। अलग–अलग स्थानों पर हो रहे आन्दोलनों में ज्ञान के सवाल को मुख्य बनाकर एक नई चेतना और एका का विकास करेगी। इन सब प्रयासों से उस सामाजिक विचार का जन्म अवश्य हो सकेगा जिसकी हमें तलाश है।

प्र0 लेकिन ज्ञान की राजनीति के लिए कोई वाहक–व्यवस्था की कल्पना भी जरूरी है।

उ0 हाँ, ऐसी व्यवस्थायें जरूरी हैं। व्यवस्थायें ही नहीं रचनात्मक कार्यक्रमों को गढ़ने की भी जरूरत है। ऐसी व्यवस्थाओं और रचनात्मक कार्यक्रमों की अवधारणा के बीज लोकविद्याधर समाजों के बीच ही खोजे जा सकते हैं। उनके संघर्षों और जीवन में ही मिलेंगे। ऐसे ही एक स्थान से मैं भी जुड़ा हूँ। विद्या आश्रम, सारनाथ से ज्ञान की राजनीति को आकार देने की वैचारिक और रचनात्मक क्रियायें होती हैं। दुनिया में अन्य स्थानों पर भी इससे मिलती–जुलती क्रियायें हो रही होंगी।

प्र0 मैं इनके बारे में अधिक जानना चाहूँगा।

उ0 मैं कुछ साहित्य पढ़ने और चिन्तन करने के लिये आपको दे रहा हूँ। इन पर विचार करें और वार्त्ताओं में भागीदार बनें। अपनी संवेदनाओं, चिंतन और कार्यों से ज्ञान की राजनीति को जन–जन तक पहुँचाने में लग जायें।

प्र0 आपसे विद्या आश्रम पर मिलने आऊँगा।

उ0 जरूर। स्वागत है।

(उत्तरदाता ने प्रश्नकर्त्ता को पाँच पर्चे दिये जिन्हें हम इस पुस्तिका में पाँच परिशिष्टों में प्रस्तुत कर रहे हैं।)

परि ाशट–1

लोकविद्या पंचायत

लोकविद्या पंचायत लोकविद्याधारक समाज की ज्ञान पंचायत है।

विचार

- मनुश्य एक बौद्धिक प्राणी है। ज्ञान और विवेक उसके स्वाभाविक गुण हैं।
- अधिकां ा लोग, किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे–छोटे दुकानदार और महिलायें, कालेज या वि ववविद्यालय में नहीं पढ़े हैं, लेकिन उनके पास अपना–अपना विस्तृत ज्ञान होता है। इनके ज्ञान को लोकविद्या कहा जाता है। ये लोकविद्याधर कहे जाते हैं।
- लोकविद्या के बल पर ये अपने घर–परिवार चलाते हैं और तरह–तरह की सुविधायें और वस्तुयें पूरे समाज को मुहैया कराते हैं।
- इनकी दुर्द ाा का कारण यह है कि इनके ज्ञान का, लोकविद्या का कोई संगठन नहीं है। राजनीति में, बड़े बाजार में, बड़े–बड़े सांस्कृतिक प्रतिशठानों में और वि ववविद्यालयों में इनके ज्ञान की कोई पूछ नहीं है। वास्तव में समाज के भाक्तिसम्पन्न स्थान लोकविद्या को ज्ञान मानने से ही इनकार कर देते हैं।
- इसके चलते दे ा और समाज के संचालक मूल्यों, नीतियों और व्यवस्थाओं पर लोकविद्याधारक समाज की समीक्षा व राय लेने की कोई आव यकता ही नहीं समझी जाती। नतीजतन लोकविद्याधारक समाज के हित की बातें ठोस रूप में सार्वजनिक नहीं हो पातीं और न भाासन की नीति और व्यवस्था में कोई स्थान ही पातीं हैं।
- जब तक लोकविद्या संगठित नहीं होती, तब तक सार्वजनिक दुनिया में लोकविद्याधारक समाज की दखल नहीं बन सकेगी। लोकविद्याधारक समाज खु ाहाली और सम्मान हासिल करे इसके लिये इसी समाज की पहल और नेतृत्व में लोकविद्या का संगठन होना जरूरी है।
- लोकविद्या पंचायत लोकविद्या का एक ऐसा स्थान होगा जहाँ समाज में सही–गलत की पहचान व्यापक लोकविद्याधर समाज अपने ज्ञान के बल पर करेगा, किन्हीं वि ोशज्ञों पर अंध भक्ति से नही।

लोकविद्या पंचायत को लोकविद्याधर समाज की
ऐसी ज्ञान पंचायत बनाना है जहाँ–

1. किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे–छोटे दुकानदार, महिलायें (लोकविद्याधर) अपने–अपने ज्ञान की क्षमता और सामर्थ्य को बढ़ाने व मजबूत करने के लिये एकत्र होंगे।

2. जाति, धर्म और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर लोकविद्याधारक एक दूसरे से बराबरी के आधार पर वार्ता करेंगे।

लोकविद्या पंचायत लोकविद्याधर समाज की
ज्ञान की गतिविधि का ऐसा स्थान बनेगी जहाँ से–

1. यह अभियान चलाया जायेगा कि विभिन्न विद्याओं से प्राप्त आय में **5** गुने से अधिक का अंतर न हो। यानि अधिकतम और न्यूनतम आय में अनुपात **5 : 1** का हो। (आज सरकारी नौकरी में यह अनुपात लगभग **15 : 1** और निजी क्षेत्र में लगभग **100 : 1** का है।)

2. इस अनुपात को बनाने का लक्ष्य रखते हुये पंचायत, बाजार, कृशि, उद्योग, ि ाक्षा, चिकित्सा आदि की व्यवस्थाओं पर प्रस्ताव तैयार कर भाासन को लागू करने के लिये भेजेगी व इसके पक्ष में तर्क प्रस्तुत करेगी।
3. संचार माध्यमों और सांस्कृतिक क्षेत्रों में लोकविद्या के मूल्य, भाक्ति और दखल के रूपों पर चिंतन कर इनके पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये जायेंगे।
4. लोकविद्या और लोकविद्याधर समाज की खु ाहाली , सम्मान और समृद्धि के लिये राजनैतिक और सामाजिक नेतृत्व के सामने सतत राय व प्रस्ताव रखे जायेंगे।

आइये,

लोकविद्या पंचायत में भागीदार होकर लोकविद्या को ज्ञान का और लोकविद्याधरों को ज्ञानी होने का दावा पे ा करें।

और

एक न्यायपूर्ण और बराबरी पर आधारित समाज को गढ़ने की लोक आधारित ज्ञान–क्रिया को समाज में स्थापित करें।

विद्या आश्रम,
सा 10/82 ए, अ ोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी
फोन : 0542–2595120
अक्टूबर, 2008

विद्या आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ समाज के वे विचारक, लोकविद्याधर, सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक और दा निक मिलते हैं जिनकी मूल संवेदना समाज के गरीब व भाोशित तबकों के साथ होती है। विद्या आश्रम समाज की भाक्ति (लोक ाक्ति) का आधार उन रचनात्मक कार्यों और संघर्शों में देखता है जो लोकविद्या की लूट और भाोशण के खिलाफ होते हैं।

परि ाश्ट– 2

भाईचारा विद्यालय

विद्या आश्रम,
अ ाोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007
फोन : 0542–2595120

भाईचारा विद्यालय लोकविद्या की प्रतिष्ठा का अभियान है।

मूल्य

- विद्या वही जो लोकहित साधे।
- ि ाक्षा वही जो गैर–बराबरी दूर करे।
- श्रम वही जो इज्जत की रोटी दे।

समझ

- दुनिया में ज्ञान का सबसे बड़ा भण्ड़ार लोकविद्या में है।
- वि वविद्यालय के बाहर लोगों के पास जो ज्ञान है वह लोकविद्या है।
- किसान, कारीगर, आदिवासी, महिलायें, छोटा दुकानदार लोकविद्याधर हैं।
- समाज में गैर–बराबरी का एक आधार लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा न होने में है।
- समाज में सभी ज्ञान–धाराओं को बराबर की प्रतिष्ठा हो। यह अभियान हमारा है।।

- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में लोकविद्या को वि वविद्यालय की विद्या के बराबर का दर्जा हो। सभी विद्याओं के बीच भाईचारा हो।
- सूचना युग में एक ज्ञान–समाज बन रहा है।
- इस युग में लोकविद्या (ज्ञान) का भाोशण चरम पर है।
- पूँजीपतियों के संस्थान लोकविद्या पर कब्जा कर रहे हैं।
- इस ाोषण और कब्जे से लोकविद्या (ज्ञान) को मुक्त कराना है। यह अभियान हमारा है।।

▪

भाईचारा विद्यालय अभियान के कार्य

- बौद्धिक सत्याग्रह की नींव डालना।
- गरीब बच्चों में प्राथमिक ि ाक्षा के मार्फत आत्मवि वास पैदा करना। 10 गाँवों में भााम को विद्यालय चल रहे हैं।
- आम आदमी, किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे दुकानदार और उनके परिवारों यानि लोकविद्याधरों की ज्ञान–भाक्ति की पहचान कर उसे सार्वजनिक प्रतिश्ठा देना। लोकविद्याधरों के साथ ज्ञान वार्ताओं और विविध सांस्कृतिक एवं भौक्षणिक आयोजनों के द्वारा इसे किया जाता है।

- अभियान के कार्यकर्ताओं में विविध प्रकार के ज्ञान के मूल्यांकन कर पाने की क्षमता का विकास करना। इसके लिये युवा ज्ञान ि ाविरों का आयोजन किया जाता है।

ज्ञान के बोल

- ज्ञान उद्योग नही है।
- ज्ञान जीविका कमाने का साधन है, मुनाफा कमाने का नहीं।
- ज्ञान समाजहित की धरोहर है, भाोषण का साधन नहीं।
- ज्ञान की सभी धाराएँ बराबर के सम्मान की हकदार हैं।
- ज्ञान मनुष्य और समाज की भाक्ति और मुक्ति का स्रोत है।

▪

विद्या आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ समाज के ऐसे विचारक, लोकविद्याधर, सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक और दा निक मिलते हैं जिनकी मूल संवेदना समाज के गरीब व भाोशित तबकों के साथ होती है। विद्या आश्रम समाज की भाक्ति (लोक ाक्ति) का आधार उन रचनात्मक कार्यों और संघर्शों में देखता है जो लोकविद्या की लूट और भाोशण के खिलाफ होते हैं।

▪

परिि ाश्ट–3

ज्ञान मुक्ति मंच

21 वीं सदी के भाुरूआत के साथ औद्योगिक युग समाप्त हो चुका है और सूचना युग भाुरू हुआ है । कहा जा रहा है कि एक ज्ञान आधारित समाज बन रहा है । हम देख रहे है कि इस युग में सूचना उद्योग (टी. वी. ,मोबाइल ,कम्प्यूटर–इन्टरनेट, आदि) सबसे तेजी से फल–फूल रहे हैं । छोटे–छोटे उद्योग–धन्धे और खेती उजड़ रहे हैं और इनसे जुड़े लोग आत्महत्या कर रहे हैं । जो युवक कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर बहुत कु ालता के साथ अंग्रेजी में काम कर रहे हैं केवल उन्हें ही मोटे वेतन मिल रहे हैं और भोश नौजवानों के लिए सम्मान लायक रोजगार के रास्ते बन्द होते जा रहे हैं ।

- **ज्ञान आधारित सूचना युग में ि ाक्षा महंगी है। यानि सामान्य लोगों से ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार छीना जा रहा है ।**
- **ज्ञान आधारित सूचना युग में ज्ञान की ज्यादातर गतिविधियाँ कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर होने जा रही हैं और वे अंग्रेजी में हैं।यानि कम्प्यूटर का ज्ञान आम जनता की पहुँच से बाहर है।**
- **ज्ञान आधारित सूचना युग में लोकविद्या (किसानी ,कारीगरी , वान्यिकी , स्वास्थ्य रक्षा , पालन–पोशण आदि लोक आधारित ज्ञान) को कम मूल्य दिया जा रहा है । यानि आम लोगों के पास जो ज्ञान है उसका भाोशण हो रहा है।**
- **ज्ञान आधारित सूचना युग में लोकविद्या पर कब्जा किया जा रहा है। पेटेन्ट बनाकर और कम्प्यूटर में संग्रहित कर लोकविद्या पर पूँजीपतियों का कब्जा स्थापित हो रहा है ।**
- **ज्ञान आधारित सूचना युग में ि ाक्षा , बाजार , प्र ाासन और सेवा (डाक, बैंक, पुस्तकालय, खबरें, भाोध, सूचना आदि) कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर स्थानांतरित हो रहे हैं । यानि सार्वजनिक व्यवस्थायें गरीब समाज से दूर हो रही हैं।**

कहने को तो यह ज्ञान आधारित सूचना युग है किंतु वास्तव में यह ज्ञान पर कब्जे और उसके भाोशण पर आधारित सूचना युग है । इसलिए आम आदमी की जिन्दगी जीने के लायक बने , समाज में न्याय की स्थापना हो और सभी नौजवानों को आगे बढ़ने के मौके मिलें इसकी पहली भार्त है कि ज्ञान को पूँजीपतियों के कब्जे से और भाोशण से मुक्त किया जाय । इसी के लिए ज्ञान मुक्ति मंच बनाया गया है ।

ज्ञान मुक्ति मंच की प्रमुख माँगें निम्नलिखित हैं –

- कम्प्यूटर हिन्दी में हो।
- गांव–गांव में मीडिया स्कूल हो।
- कृशि उत्पाद का जायज़ दाम हो।
- घर–घर में उद्योग हो।
- स्थानीय बाजार को संरक्षण हो ।
- लोकविद्या को ि ाक्षा में ाामिल किया जाय।
- उच्च ि ाक्षा के दरवाजे सबके लिए खुले हों।

ज्ञान मुक्ति मंच जगह–जगह पर नौजवानों के ज्ञान ि ाविर चलाकर इस विशय पर नौजवानों को नई समझ से लैस कर रहा है । इन ज्ञान ि ाविरों में आगे बढ़कर हिस्सा लें ।

संचालन समिति, ज्ञान मुक्ति मंच,
विद्या आश्रम , अशोक मार्ग ,सारनाथ ,वाराणसी । फोन : 2595120

परिि ाश्ट–4

लोकविद्या सत्संग

विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अ ोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007, फोनः 0542–2595120

लोकविद्या सत्संग पाखण्ड और गैरबराबरी के खिलाफ अलख जगाता है।

गंगाजी के तट पर प्रत्येक महीने की 30 तारीख को भााम 5.00 बजे से लोकविद्या सत्संग होता है।

किसान, कारीगर, मज़दूर, छोटा दुकानदार एक हों

क्योंकि

सूचना युग में कम्प्यूटर–इंटरनेट और वै वीकरण मिलकर
किसानी, कारीगरी, छोटी दुकानदारी को उजाड़ रहे हैं,
मज़दूरी को घटा रहे हैं।

कैसे ?

- **इनके श्रम को बाजार में कम दाम देकर**
- **इनके ज्ञान यानि लोकविद्या को लूटकर**
- **ि ाक्षा को महंगी बना उन्हें नये ज्ञान से वंचित कर**

लोकविद्या सत्संग क्या है?

लोकविद्या सत्संग लोकविद्या की प्रतिष्ठा का अभियान है।

लोकविद्या सत्संग में भाामिल होकर तीन काम करें

- **सूचना युग में श्रम और ज्ञान की लूट को रोकने के उपाय खोजे,**
- **इस लूट को रोकने के लिये आपस में विचार और चिंतन करे,**
- **बाजार और ज्ञान के क्षेत्र में हो रहे भाोषण की समझ और विरोध को आकार दे।**

घाट–घाट पर विविध ज्ञानधर बीच यह अलख जगाना है।

कौन है ज्ञानी, ज्ञान कहाँ–कहाँ, फैसला यह करवाना है।।

यह न सोचें कि कम पढ़ा–लिखा आदमी अज्ञानी होता है, वह लोकविद्या का ज्ञानी होता है।

हम आपको सत्संग में आने का निमंत्रण देते हैं और आग्रह करते हैं कि आप इस लोकविद्या सत्संग में विचार के साथ भागीदार हों।

▪

परि िाश्ट–5

बौद्धिक सत्याग्रह

ज्ञान मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। ज्ञान से ही मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा होती है और ज्ञान से ही समाज चलता है। लेकिन यदि ज्ञान पर निहित स्वार्थों का कब्ज़ा हो जाय और यदि ज्ञान प्रबन्धकों के हाथ की कठपुतली बन जाय तो उसके शोषण के रास्ते खुलते हैं, सामाजिक मूल्यों में गिरावट आती है, बृहत् समाज में विपन्नता आती है और समाज दो हिस्सों में बँट जाता है। एक ओर ज्ञान पर कब्ज़े की पूँजी की दुनिया होती है तो दूसरी ओर लगभग सब लोग। ज्ञान की मुक्ति ही मनुष्य की मुक्ति का रास्ता है। 21वीं सदी को यह ऐतिहासिक चुनौती उठानी है। इसकी शुरूआत बौद्धिक सत्याग्रह से की जानी चाहिये।

बौद्धिक सत्याग्रह ज्ञान के सम्बन्ध में एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने और उसे व्यवहार में लाने का तरीका है। नीचे दिये गये बिन्दु व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर इसे समझने और इसे अभ्यास में लाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

1. ज्ञान के क्षेत्र में श्रेणीबद्धता यानि ऊँच–नीच को अस्वीकार करना।
2. ज्ञान के किसी एक प्रकार को सबसे बढ़िया न मानना।
3. ज्ञान के किसी एक स्थान को सबसे अधिक महत्व न देना।
4. ज्ञान के निर्माण के किसी एक तरीके को सबसे सही न मानना।
5. ज्ञान के निजीकरण का विरोध करना।
6. ज्ञान के संगठन के विविध तरीके अपनाना।
7. कम्प्यूटर सूचनाओं के भण्ड़ारण और प्रक्रियाओं की मशीन है इसे मनुष्य की ही एक कृति से अधिक दर्जा न देना।
8. ज्ञान के प्रबन्धन में कम्प्यूटर को एक मशीन से अधिक दर्जा न देना।
9. इंटरनेट सम्पर्क और संचार का माध्यम है कोई अलग किस्म का समाज बनाने का माध्यम नहीं। मायावी **(virtual)** दुनिया की सीमाओं को पहचानना और उजागर करना।
10. लोकविद्या को विद्या का सम्मान देना।
11. लोकविद्या की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये कार्य करना।
12. लोकविद्या–धारक समाजों के प्रति सम्मान की दृष्टि रखना।
13. शिक्षा में लोकविद्या के समावेश के तरीके विकसित करना।
14. कला को केवल मनोरंजन का साधन बनाने का विरोध करना।
15. ज्ञान के शोषण की व्यवस्थाओं को उजागर करना और इस शोषण के विरोध के संघर्षों में शामिल होना।
16. व्यापार और बाजार के मार्फत किसानों और कारीगरों की विद्या के शोषण का विरोध करना।
17. लोकविद्या–धारक समाज अपनी विद्या का इस्तेमाल बिना रोकटोक कर सके इसकी हिमायत करना।

उपरोक्त मान्यताओं के अनुरूप अपना जीवन ढालना ही आज बौद्धिक सत्याग्रह का रूप है।

विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अ ोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007, फोनः 0542–2595120

☸